५ रुपये

जीवनीय

शरद
अंक ३
१९८९ ई

लोक स्वास्थ्य की द्वैमासिक –पत्रिका

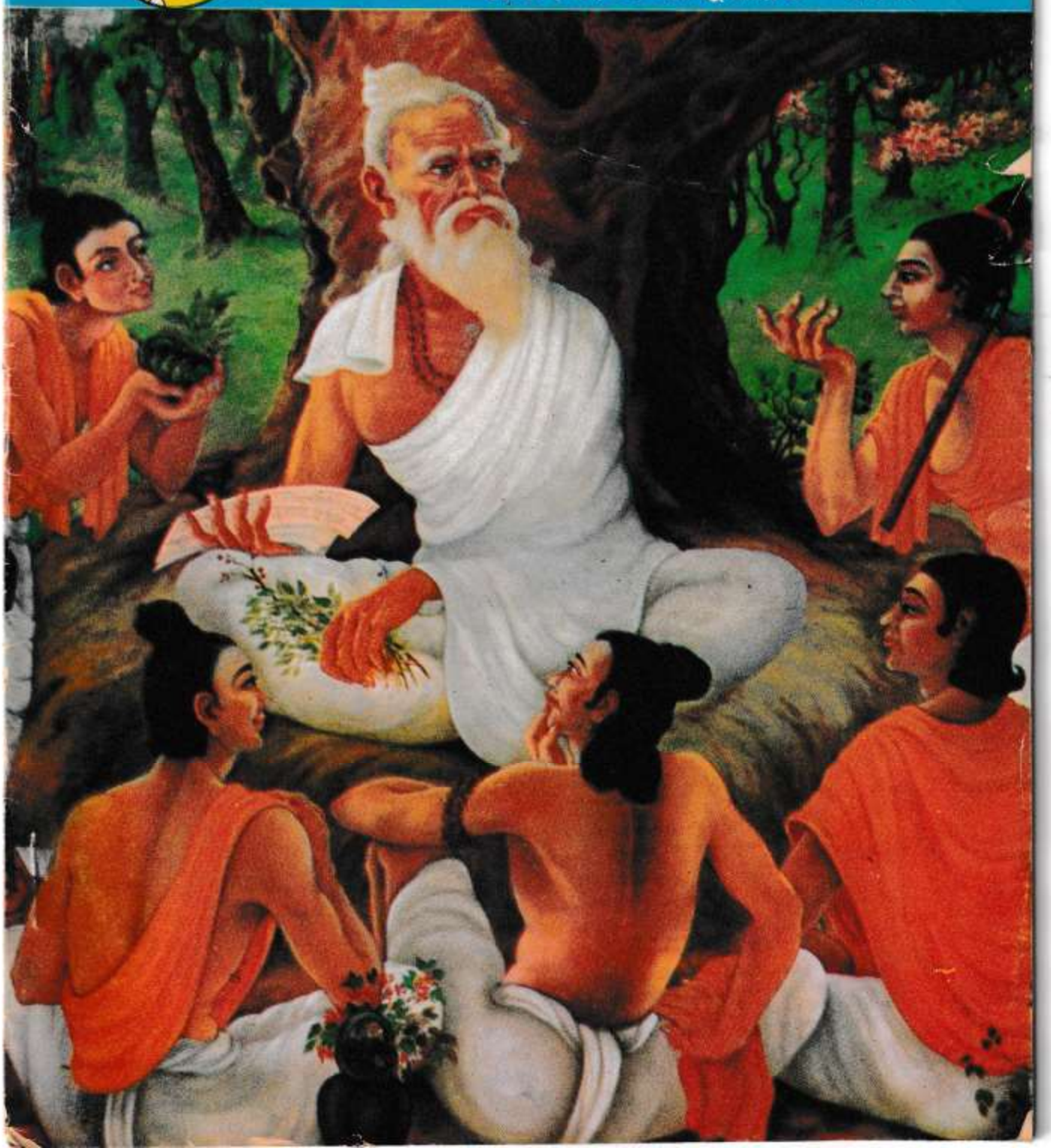

जीवनीय द्वैमासिक

कार्यकारी सम्पादक
डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

सम्पादक मंडल
प्रो. राजकिशोर मिश्र
डा. हरि प्रकाश शर्मा
वैद्य ना. द. मिश्र
वैद्य उमेश चन्द्र शर्मा
वैद्य अरविंद शुक्ल
हकीम ए. ह. कुरैशी
डा. रवि कुमार शर्मा
डा. पा. ना. मिश्र
डा. (श्रीमती) शैला चन्द्रा
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
श्री रोमेलो मालवीय
डा. नि. च. शाह
वैद्य लक्ष्मीकांत कुलकर्णी

संयोजक
पं. माधवाचार्य

साज – सज्जा
श्री अली कौसर

कार्टून
श्री प्रदीप कुमार श्रीवास्तव

इस पत्रिका के लिए कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं।

संपादकीय कार्यालय:
लोक स्वास्थ्य परम्परा संवर्धन समिति,
सी-३/५ रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति, सी-३ / ५ रिवर बैंक कालोनी, लखनऊ के लिए डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा संपादित तथा सेंटर आफ मीडिया एण्ड प्रेस द्वारा मुद्रित

केन्द्रीय औषधि शोध संस्थान, लखनऊ से साभार

अनेनोपदेशेन नानौषधिभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमुपलभ्यते।
तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य !!१२
!! च. सू. २६

अर्थात्
" इस ज्ञान की सहायता से यह स्पष्ट है कि विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसका युक्ति पूर्वक प्रयोग करने पर वह किसी न किसी रुप में औषधि का काम न करता हो।"
जीवक के विद्यार्थी जीवन की यह घटना इस बात का संकेत है कि भारतीय परम्परा में वनौषधियों को कितना महत्व दिया जाता था।

संपादकीय सलाहकार समिति

वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानन्द पाण्डे, नई दिल्ली
वैद्य (श्रीमती) श. कोपिकर, बम्बई
वैद्य रमेश म. नानल, बम्बई
वैद्य नरेन्द्र सो. भटट, बम्बई
प्रो. रामहर्ष सिंह, वाराणसी
डा. गीता बाजपेई, वाराणसी
हकीम सै. खलीफतुल्लाह, मद्रास
प्रो. राजकिशोर मिश्र, लखनऊ
डा. मनमोहन लाल, लखनऊ
डा. हरि प्रकाश शर्मा, लखनऊ
वैद्य भा. वि. साठे, नागपुर
श्री गंगा राम जानू आवारी, नासिक
वैद्य.ह. श्री. कस्तूरे , गांधीनगर
वैद्य टी. आर. आनन्दलवार, मैसूर
डा. उमा, बंगलूर
सिद्ध वैद्य के. नटराजन, मद्रास
हकीम सैफुद्दीन अहमद, मेरठ
डा. शिव कुमार मिश्र , जौनपुर

जीवनीय के चंदे की दरें
एक प्रति ५ रु.
वार्षिक २५ रु.
द्विवार्षिक ४५ रु.
त्रैवार्षिक ६५ रु.
(चंदा डाकखर्च सहित है)

संपादकीय

विश्वभर की तमाम सभ्यताओं में मनुष्य अतीत काल से ही वनौषधियों का उपयोग स्वस्थ रहने के लिए करता आया है। अतः स्वास्थ्य की जो भी स्थानीय परंपराएं जहां कहीं भी विकसित हुईं उनमें वनौषधियों का महत्वपूर्ण स्थान था। भारत की भौगोलिक विविधता के कारण यहां के जंगलों में हजारों की संख्या में गुणकारी वनौषधियां पाई जाती हैं। यह स्वाभविक ही था कि न केवल स्वास्थ्य की स्थानिक परंपराओं में हमारे अनगिनत ग्राम एवं वनवासियों ने इन वनौषधियों के गुणों को पहचान कर उनका प्रयोग करना सीखा वरन इनमें से अधिकतर परंपराएं अभी तक उनका प्रयोग कर रही हैं। यही नहीं, देश में जन्मी और पली-बढ़ी स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की पद्धतियों, जैसे आयुर्वेद, सिद्ध एवं यूनानी में इन वनौषधियों के प्रयोग पर विशेष जोर दिया गया।

बढ़ते औद्योगिकीकरण का असर जब देसी चिकित्सा पद्धतियों पर पड़ा तो औषधि निर्माण की भी बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियां खुलती चली गईं जिनमें पेटेंट दवाओं का उत्पादन होता है। इसके फलस्वरूप आज देश भर में देसी चिकित्सक भी व्याधिविशेष के लिए मरीज को पेटेंट औषधि बाजार से खरीद कर सेवन करने की सलाह देते हैं। इनमें से अधिकांश परिस्थितियों में रोगी की प्रकृति और पथ्यापथ्य के सिद्धांतों का ध्यान नहीं रखा जाता है। संभवतः दोष-दूष्य आदि की बारीकियों का ध्यान रखना तो इस स्थिति में संभव भी नहीं हो पाता है। आज चूंकि अधिकतर देसी चिकित्सक अपनी दवाएं तो स्वंय बनाते नहीं हैं और देसी दवाओं में मानकीकरण के अभाव में पेटेंट दवाओं में विभिन्न घटकों की मात्रा की जानकारी उन्हें नहीं होती अतः उपचार और भी कठिन हो जाता है।

इस परिवर्तन ने देसी चिकित्सा पद्धतियों के व्यक्तिपरक उपचार सिद्धांत को बुरी तरह झकझोर दिया है और धीरे-धीरे उसके मूल सिद्धांत से दूर हट कर व्याधिपरक उपचार पद्धति का चलन बढ़ रहा है जो संभवतः सफल नहीं हो सकता। यह इसी विडंबना का असर है कि जहां एक ओर देसी चिकित्सा पद्धति का औषधि निर्माण उद्योग दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति कर रहा है वहीं इन पद्धतियों के मूल स्रोत (उनसे संबंधित शिक्षण एवं शोध संस्थाएं, उनसे जुड़े चिकित्सक आदि) रसातल की ओर गिरते जा रहे हैं। यद्यपि इनमें गिरावट के अन्य महत्वपूर्ण कारणों का जिक्र हमने पिछले अंक के संपादकीय में भी किया था तथापि हमारी यह मान्यता है कि इन चिकित्सा पद्धतियों के उत्थान के लिए यह परम आवश्यक है कि इनसे जुड़े चिकित्सक इसके व्यक्तिपरक मूल सिद्धात की गहराई को समझ कर इसे नित्यप्रति उपयोग में भी लाएं।

इस नए स्वरूप में इन चिकित्सा पद्धतियों पर आधारित उद्योग का स्वरुप क्या होना चाहिये, यह चर्चा का विषय है। परंतु इतना तो स्पष्ट ही है कि अधिकांश चिकित्सकों को पेटेंट दवाओं के प्रयोग के बजाय मूल औषध द्रव्यों के प्रयोग की कला में निपुणता हासिल करनी ही होगी। प्राथमिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी पद्धतियां तभी उपयोगी साबित हो सकेंगी जब समाज के अधिकतर वर्गों में इन वनौषधियों के नैसर्गिक रुप में प्रयोग की परंपरा फिर से मजबूत हो।

इन्ही समस्याओं की तह में जाने के लिए लोस्वापसंस्था ने न केवल जीवनीय के प्रकाशन का दायित्व लिया है वरन देश की बहुमूल्य वनौषधि संपदा को भी बचाने और बढ़ाने का काम भी शुरु किया है। तदनुसार हमारे संबद्ध संगठन और व्यक्ति न केवल वनौषधि वाटिकाओं और नर्सरी लगाने के काम में जुड़े हैं वरन हम लोग चाहते हैं कि इन वनौषधियों को लोग घर-घर में लगा कर अपने नित्यप्रति के व्यवहार में भी लाएं। हमारे विचार से तो जीवनीय का संदेश तभी घर-घर पहुंचेगा जब आप सभी पाठक इस दिशा में भी हमें अपना सहयोग दे सकें।

जीवनीय संपादक मंडल अपने पाठकों को शरद ऋतु के त्यौहारों - विजयदशमी, ईद- ए- मिलादुन्नबी एवं दीपावली आदि की शुभकामनाएं देता है।

पाठकों के पत्र

महोदय,

आयुर्वेद से संबंधित "जीवनीय" पत्रिका के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण देखे। जहां तक मुझे याद पड़ता है हिन्दी में इस विषय से संबंधित यह पहली पत्रिका मैंने देखी है। मैटर पठनीय, ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी है। सुंदर प्रकाशन के लिए आपको हार्दिक बधाई देता हूं।

--अमृत लाल नागर, लखनऊ

--लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्द्धन समिति द्वारा प्रकाशित "जीवनीय" द्वैमासिक पत्रिका पढ़कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वास्तव में यह अनूठा प्रयास बहुत सराहनीय है।

हरिकृष्ण , रहमानखेड़ा, लखनऊ

--"जीवनीय" का अंक देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। लगता है, वर्षों से निकलने वाली कोई जमी- जमाई पत्रिका हो। सामग्री का प्रस्तुतीकरण, मुद्रण, गेटप सभी कुछ दिव्य लगा। विश्वास है, यह पत्रिका शीघ्र ही अखिल भारतीय स्तर पर लोकप्रिय हो जायेगी और इसका प्रकाशन अन्य भाषाओं में भी करना पड़ेगा।

-जगदीशचन्द्र मिश्र, वाराणसी

--आज अचानक लखनऊ रेलवे स्टेशन पर "जीवनीय" पत्रिका का वर्षा अंक दिखाई दिया। लो. स्वा. प. सं. स. का यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय लगा।

--रजनीश अरोड़ा , बिशुनपुर, बिहार

--"जीवनीय" का द्वितीय अंक १९८९ देखा। स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए पत्रिका अति उत्तम है तथा "आंखें कैसे अच्छी बनी रहें" शीर्षक से प्रकाशित लेख विशेष रोचक लगा। स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, प्राकृतिक उपचार व आयुर्वेद चिकित्सा के संदर्भ में पत्रिका समाजोपयोगी तथा ज्ञानवर्धक है।

-चारुचन्द्र मुनगली, रानीखेत

--आपके द्वारा संपादित जीवनीय पत्रिका प्राप्त हुई। आद्योपांत अवलोकन के पश्चात् हार्दिक प्रसन्नता हुई। हिन्दी भाषी समुदाय के लिए अपने यह स्वास्थ्य निर्माण एवं पालन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। आयुर्वेद के विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। आयुर्वेद अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान तथा प्रकाशन आदि की सामग्री को भी इसमें उचित स्थान देवें तो अति उत्तम होगा।

--डा. लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरु, वाराणसी

--"जीवनीय" का ग्रीष्म अंक पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। हम सबने पढ़ा और सराहा। गो जैसा कि आपने संपादकीय में लिखा है स्टाइल और तस्वीरें अगले अंकों में सुंदर बना दी जायेंगी, उसकी प्रतीक्षा है।

--डा. आर. के. दत्ता, नई दिल्ली

--"जीवनीय" का अंक देखने का अवसर मिला। प्रारंभ से अंत तक उसे पूरे मनोयोग से पढ़ा। आज के जीवन की व्यस्तता के बीच पूरा अंक पढ़ने की मानसिकता उस अंक के प्रति नमन है। उसकी उपयोगिता की पुष्टि है। जिन प्राकृतिक वस्तुओं से औषधियां बनतीं और स्वास्थ्यप्रद होती हैं उन्हें हम ज्ञान-विज्ञान के इस युग में भूल-सा गये हैं। प्रस्तुत पत्रिका इस ओर स्मरण दिलाती और महत्व उजागर करती है। कोई भी पाठक अपने दैनिक जीवन में इन औषधि-तत्वों का लाभ उठा सकता है।

--शिव शंकर मिश्र , लखनऊ

--"जीवनीय" पत्रिका के ग्रीष्म तथा वर्षा अंकों को पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। आजकल जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति की निरंतर बढ़ती हुई महंगाई तथा आधुनिक औषधियों के अत्यधिक प्रयोग से होनेवाले कुप्रभावों से घबराकर जनसाधारण का झुकाव प्राकृतिक तथा अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर बढ़ने लगा है, आपका लोक स्वास्थ्य परंपराओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास सराहनीय है और इसमें आपको अवश्य ही सफलता मिलेगी।

आपकी पत्रिका आयुर्वेदीय अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की दृष्टि से तो अत्यंत उपयोगी है ही, यह जनसाधारण के लिए भी अत्यधिक उपयोगी हो सकती है यदि आप इसमें साधारण बीमारियों से संबंधित ऐसे साधारण घरेलू उपचारों को भी समाविष्ट करने पर विचार करें, जो प्रत्येक घर में मिलने वाली अतिसाधारण जानी-पहचानी वस्तुओं पर आधारित हों और जिनसे कम मूल्य में बहुत आसानी से कम समय में औषधि तैयार की जा सके। हमारे घरों की बड़ी-बूढ़ी महिलाएं ऐसे उपचारों के लिए सदा प्रसिद्ध रही हैं।

--सुरेश कुमार भार्गव, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, लखनऊ

--वर्षा अंक बहुत अच्छा निकला है। आम लोगों को यह बहुत पसंद आयेगा। आगामी अंक इससे भी अच्छे निकलेंगे ऐसी आशा है। फिर भी इस अंक में अंतिम पृष्ठ पर "शब्दकोश" स्तंभ में यह भूल रह गयी है कि शरद ऋतु में वात प्रकोप बताया गया है जबकि वात प्रकोप का काल वर्षा ही है।

--वैद्य चंद्रशेखर गणेश जोशी, पूना

(वैद्य चं.ग. जोशी के हम अत्यंत आभारी हैं। पाठकगण कृपया यथास्थान संशोधन कर लें।) **--सं. मं.**

वैद्य रमेश मधुसूदन नानल, बंबई

उच्च रक्त-दाब और आहार-विहार

आजकल रक्त दाब(हाइपरटेन्शन)कम करने के लिए दर्जनों औषधियां बाजार में उपलब्ध हैं। अतः जब भी डाक्टर और रोगी उच्च रक्तदाब की समसया से दो-चार होते हैं तब वे "गोलियों" के विषय में ही सोचते हैं। आहार-विहार में परिवर्तन के विषय में वे कम ही सोंचते हैं क्योंकि शरीर में उत्पन्न नमक की अधिकता को निकाल बाहर करने के लिए नमक छोड़ने से कहीं सरल उपाय गोलियां हैं। लेकिन अनुभव हमें बताता है कि जो बात इतनी आसान लग रही है उसके पीछे कोई-न-कोई पेच अवश्य है।

रक्तदाब कम करने वाली औषधियों के कुप्रभाव से विषाद, नपुंसकता, चक्कर आना, सिर दर्द , अनिद्रा, पेशियों का दर्द, कमजोरी, उल्टी, दस्त, दिल का धड़कना और अंधापन जैसी पेचीदगियां भी पैदा हो सकती हैं। इनकी संभावनाओं का पूर्वानुमान तथा इनका नियंत्रण बहुत ही कठिन है क्योंकि प्रत्येक शरीर औषधि से प्रतिक्रिया अलग ढंग से करता है।

इसके अतिरिक्त रक्तदाब की औषधियों से जो अपेक्षा की जाती है उसकी पूर्ति उनके द्वारा कई बार हो नहीं पाती। अमेरिकन जर्नल आफ मेडिसिन, १९७६ में छपी एक रपट के मुताबिक मूत्रवर्धक औषधियां रक्तदाब को कम कर सकती हैं लेकिन हार्ट अटैक की संभावनाओं को भी वे कम करें, यह आवश्यक नहीं। अमेरिकी पत्रिका प्रिवेन्शन, १९७७ के अनुसार (१) केवल दवाओं से ही हर प्रकार के रक्तदाब के मरीज अच्छे नहीं हो सकते,(२)उच्च रक्तदाब की औषधियां निरापद नहीं और (३)उच्च रक्त दाब की चिकित्सा में उचित आहार-विहार का बहुत महत्व है।

आधुनिक प्रगति ने मनुष्य जाति को अनेक संकटों के मुंह में डाल रखा है। आलू के चिप्स, विविध प्रकार की शराबें , सिगरेट, आठ घंटे की बैठक वाली नौकरी और वायुमंडलीय प्रदूषण ये सभी हमारे रक्तदाब को उछालने वाले तत्व हैं। जहां तक मेरा अनुभव है उच्च रक्तदाब का कारण अनुचित आहार है और उपयुक्त आहार से ही उसको नियंत्रण में रखा जा सकता है।

> प्रस्तुत लेख में बंबई के एक मशहूर वैद्य रमेश नानल जी ने न केवल उच्च रक्तदाब के कारणों की तह में जाते हुए उनसे बचने के लिए उचित आहार एवं विहार की व्यवस्था बताई है वरन उच्च रक्तदाब के मरीजों के लिए उपचार के सरल घरेलू नुस्खे भी बताए हैं। हमें अपेक्षा है कि पाठक इन उपचारों का प्रयोग करके हमें अपने अनुभव अवश्य लिखेंगे।

गुणकारी आहार- कुछ आहार ऐसे हैं जो बढ़े हुए रक्त दाब के रोगी के लिए विशेष लाभकारी हैं जैसे पेठा, लौकी, भिंडी, चिंचेंड़ा, बंद गोभी, कुंदरू, तोरई, घियातोरई, चौलाई, कांटा चौलाई, धनिया, जीरा, पुदीना , ककड़ी, कद्दू, गेहूं, चावल, मूंग, नारियल, अदरक, सपरेटा दूध, शहद और मट्ठा-खाने में केवल इन्हें ही लेने की आदत डालनी चाहिए।

हानिकारक आहार--कई प्रकार के भोजन हृदय के रोगियों के लिए विशेष हानिकारक हैं जैसे नमक, दही, मांस, मछली, गुड़, केला, फ्रिज की चीजें--कस्टर्ड, आइसक्रीम, जेली, ठंडा पानी आदि। कुल्फी, तिल, उड़द, सेम, दूध, फल, मिठाइयां और शराब, तली हुई चीजें, इन सबके प्रति उच्च रक्त दाब के रोगी को अरुचि हो जानी चाहिए।

गुणकारी विहार

--नित्य नियत समय पर भोजन करें-भोजन हमेशा निश्चित समय पर ही करना चाहिए। दोपहर का भोजन ११ बजे और रात का भोजन सात बजे के लगभग लेना श्रेष्ठ है।

--भूख से कम खायें- यदि आपको आठ रोटियां खाने की भूख है तो आप छह रोटियां ही खाकर संतोष करने का प्रयास करें।

--ताजा व हल्का भोजन लें- भोजन बासी या दोबारा आग पर चढ़ाया हुआ न हो । खाने में सलाद, रायता, चटनी आदि ताजा हरी सामग्री अधिक रहे। मसाला, बघार, सिरका, इमली आदि से परहेज करें। क्योंकि ये आपके पाचन तंत्र को उत्तेजित करके आपके रक्तदाब को अचानक बढ़ा सकते हैं।

--पानी पीने में संयम रखें-बहुत लोगों का खयाल है कि पानी पीने से मूत्र की मात्रा बढ़ेगी और रक्तदाब कम होगा। यह बात हर किसी के लिए ठीक नहीं। यदि आपको पेशाब की कमी के कारण उच्च रक्त दाब है तो अत्यधिक पानी की आदत से आप संकट में पड़ सकते हैं।

--प्राकृतिक वेगों को न रोकें- प्राकृतिक वेगों को कभी न रोकने का अभ्यास करना चाहिए। यदि इसमें हम चूक गये तो अनेक बीमारियां उत्पन्न हो जायेंगी। व्यस्त डाक्टर, वकील, अध्यापक और उच्च अधिकारियों को अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अवसर

नहीं मिल पाता जिससे वे उच्च रक्तदाब से पीड़ित हो जाते हैं।

--मानसिक संतुलन न खोंयें - दुनिया में क्रोध करने से कोई बात नहीं बनती। क्रोधी स्वभाव के लोग अधिक कष्ट पाते हैं। इसी प्रकार डरपोक एवं लोभी लोग भी उच्च रक्तदाब अर्जित कर लेते हैं। ऐसे लोगों के लिए प्रार्थना एवं ध्यान करना उत्तम उपाय है।

वर्जनाएं

धूप से बचें-उच्च रक्त दाब के रोगियों को धूप में रहने से संकट उत्पन्न हो सकता है।

--अतिपरिश्रम न करें-सामान्य दैनिक कार्य करें किन्तु थकान का अनुभव होते ही काम छोड़ कर १० मिनट आराम करें।

संभोग में संयम रखें-संभोग के समय रक्तदाब बढ़ जाता है। अनेक लोग ऐसे समय हार्ट अटैक के शिकार हुए हैं। इसलिए इसमें संयम रखें।

उच्च रक्तदाब के घरेलू उपचार

उच्च रक्तदाब को संयमित रखने के कई साधारण घरेलू नुस्खे यहां दिए हैं। इनमें से किसी एक या अधिक का प्रयोग कर सकते हैं परंतु समय-समय पर अपने रक्तदाब की माप भी करवाते रहें ताकि लाभ न होने की स्थिति में या रक्तदाब एकदम कम होने लगने की स्थिति में कुशल चिकित्सक से संपर्ककर सकें।

--१०० ग्राम बंदगोभी कुकर में पकायें और उसमें हींग, सेंधा नमक और जीरा मिलाकर दोनों वक्त भोजन के बाद लें।

--नित्य प्रातः खाली पेट बंदगोभी के २५० मिली रस में चौथाई चम्मच जीरा चूर्ण मिलाकर दो महीने तक लें।

--लौकी के २५० मिली. रस में आधा चम्मच जीरा चूर्ण और आधा चम्मच शक्कर मिलाकर प्रातः खाली पेट लें और एक घंटे तक निराहार रहें।

--दो गिलास पानी में एक बड़े चम्मच धनिया के बीज तथा एक छोटा चम्मच जीरा मिलाकर एक गिलास शेष रहने तक उबालें। इसे दिन में तीन-तीन घंटे के अंतर पर चार बार लें। यह प्रयोग कम से कम दो मास तक अवश्य करें।

--अनिद्रा की शिकायत में चित लेटकर आधा चम्मच शुद्ध तिल तेल नाभि में भर कर आधे घंटे तक पड़े रहें। तदुपरांत उसी तेल से पेट और मेरुदंड की मालिश हल्के हाथों से करें। सिर पर ब्राह्मी तेल लगायें। प्रयोग को कम से कम दस दिन तक अवश्य चलायें।

--शीत ताप नियंत्रित एयरकं डीशन्ड भवन में देर तक न रहें। ○

डाबर च्यवनप्राश

दुनिया के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक टॉनिक

डाबर

च्यवनप्राश

आपके परिवार का
प्राकृतिक स्वास्थ्य टॉनिक

विरेचन या जुलाब

– वैद्य श्री. ह. कस्तुरे, गांधीनगर

विरेचन या जुलाब आयुर्वेद की अत्यंत महत्वपूर्ण चिकित्सा–पद्धति है। इसमें रोगी को जुलाब देकर उसके शरीर के दोषों को मल द्वार से बाहर निकाल देते हैं। इसके सफल प्रयोग से रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। विरेचन के लिए दी जाने वाली औषधियों में जमालगोटा को सब जानते हैं जो कि एक तीव्र विरेचक है।

जो दवा बिना तकलीफ के पाखाने को निकाल बाहर करती है, उसे सुख विरेचक कहते हैं। जैसे त्रिवृत या निशोत्तर चूर्ण, जिसके दो से तीन ग्राम की मात्रा में लेने पर सुखपूर्वक विरेचन होता है। विरेचन के वे द्रव्य मृदु विरेचक कहलाते हैं, जिनसे एक या दो बार पेट साफ होता है जैसे, अमलतास की फली का गूदा, जिसके तीन से छह ग्राम तक का क्वाथ २० से ४० मिली लेने से एक या दो दस्त हो जाते हैं। विरेचन के वे द्रव्य तीक्ष्ण विरेचक कहलाते हैं जिन्हें एक या दो रत्ती की मात्रा में लेने से पांच–सात बार पाखाना होता है, जैसे थूहर का दूध, जमालगोटा आदि।

विरेचन विशेष रूप से पित्त दोष को दूर करने की विधि है। पित्त ही शरीर में उष्णता उत्पन्न करता है और भूख बढ़ाने, खाना हजम कराने, शरीर को पुष्ट कराने, आंखों की ज्योति बढ़ाने और त्वचा में कांति उत्पन्न करने वाला भी है। इसकी घट–बढ़ से दाह, जलन, चर्म–विकार और अन्य विविध रोग पैदा होते हैं। पित्त का नियंत्रण करने के लिए विरेचन से बढ़ कर कोई उपाय नहीं है। इससे पित्त के साथ ही कफ दोष भी दूर हो जाते हैं, जिससे पुरानी सर्दी, पीनस (नाक का सायनस), तमक श्वास (दमा) आदि रोगों में भी लाभ होता है। विरेचन से पेट की गैस भी मलद्वार से बाहर निकल जाती है अतः वातरोगों में भी विरेचन से राहत मिलती है, विशेष रूप से पक्षाघात (लकवा), अर्दित (चेहरे का लकवा), कूल्हे का गठिया (शियाटिका), गठिया आदि में इसका प्रयोग गुणकारी है।

विरेचन ऐसी चिकित्सा–विधि है जिसमें रोगी को किसी विशेषज्ञ के पास जाने की आवश्यकता नहीं होती। साधारण रोगों में रोगी स्वयं पर इसका प्रयोग बेखटक कर सकता है। हां, पंचकर्म में वर्णित शास्त्रोक्त विरेचन के प्रयोग के लिए निष्णात वैद्य का मार्गदर्शन आवश्यक है।

विरेचन के उपयुक्त रोग

पुराने बुखार में, जो एक हफ्ते से अधिक दिनों से चल रहा हो और जिसमें वात और पित्त का प्रकोप होता है, विरेचन से अच्छा हो जाता है। इसके लिए हफ्ते में एक बार अरेंडी का तेल २० से ३० मिली लेना चाहिए। काली कुटकी, जो कि अत्यंत कड़वी होती है, उसका चूर्ण ३ से ६ ग्राम गरम पानी के साथ लेने से भी जीर्ण ज्वर ठीक हो जाता है।

विरेचन के प्रयोग से समस्त **चर्मरोग** अच्छे हो सकते हैं इसके लिये निम्नांकित में से किसी एक का सेवन करें:–

–त्रिफला चूर्ण तीन से छह ग्राम गरम पानी के साथ लें।

–३०–३५ मिली एरंड तेल को ३० मिली मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ लें।

–द्राक्षा (मुनक्का) अमलतास और हरड़ तीनों दस–दस ग्राम लेकर क्वाथ तैयार करें और २५ मिली क्वाथ केवल एक बार लें।

–खट्टी डकार, अपच, अजीर्ण, अरुचि, पेट फूलने और कब्ज़ में तीन ग्राम त्रिवृत चूर्ण मिश्री के साथ लें।

–आंखों में, हाथ–पांव में, सिर में या पेशाब में जलन, पीलिया, बवासीर, भगंदर इत्यादि रोगों में भी विरेचन लाभप्रद होता है। हृद्रोग में भी विरेचन से पेट की गैसों के निकाल दिये जाने के कारण आराम मिलता है। जिन रोगों में मुंह, नाक, कान इत्यादि ऊर्ध्व भाग से रक्तस्राव होता है उनमें भी विरेचन लाभदायक है। पेट से सभी प्रकार की कृमियों को भी निकाल बाहर करने में विरेचन उत्तम उपाय है।

जिन लोगों का कोठा नरम होता है, उन्हें तीक्ष्ण विरेचन तो क्या मृदु विरेचन से भी कई दस्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए निम्न उपायों में से किसी एक का चयन करना चाहिए:–

–रात में सोते समय गरम दूध में दो चम्मच घी डालकर पियें।

–गन्ने के रस में सोंठ, काली मिर्च, और सेंधा नमक डालकर पियें।

–१००–१५० ग्राम हरे साग जैसे पालक, मेथी, चौलाई, चूका आदि खायें।

–१०–२० ग्राम काला मुनक्का खाकर पानी पियें।

–मूंग की खिचड़ी में घी डालकर अथवा मूंग का सूप घी डालकर पियें।

सावधानी

विरेचन के लिए एक ही योग नित्य बहुत दिनों तक न लें। प्रकृति को भी अपना काम करने का अवसर दें। बच्चों को हींग को घी में मिलाकर नाभि के नीचे लेप कर देने भर से विरेचन हो जाता है। अरेंडी के तेल में रुई की बत्ती को डुबो कर गुदा में प्रवेश करा देना छोटे शिशुओं के लिए तीव्र विरेचन का काम करता है।

आमवात के सरल उपचार

वैद्य राजकिशोर मिश्र, लखनऊ

प्रातः काल नींद खुलने पर बिस्तर पर पड़े रहने के साथ-साथ शरीर में जकड़ाहट सी बनी रहना, काम के बाद जल्दी थकावट, भूख कम लगना, मल-प्रवृत्ति में अनियमितता या मलबद्धता(कब्ज)हाथ पैर के अगूंठे में या किसी जोड़ में दर्द या शोथ (सूजन)होना तथा इनका अपने आप शान्त हो जाना फिर कुछ दिन बाद पुनः किसी अन्य स्थान पर दर्द होना और उसके ठीक हो जाने का क्रम समय समय पर चलते रहना तथा धीरे-धीरे संधियों जोड़ों में सूजन एवं दर्द का स्थायीपन, जो कालान्तर में एक व्याधि के रूप में बदल जाता है आमवात कहलाता है।ऐसे लक्षण अनेक व्यक्तियों में देखने को मिलते हैं। यह क्रम इतना धीरे-धीरे होता है कि व्यक्ति को इसका आभास ही नहीं होता कि वह किसी बड़ी बीमारी से आक्रान्त हो रहा है। प्रारम्भ में वह छोटी-मोटी दवाएं लेकर अपनी पीड़ा ठीक कर लेता है परन्तु धीरे धीरे यह पीड़ा एक स्थायी सन्धि विकृति तथा उसमें वेदना का रूप लेकर हमेशा के लिए व्यक्ति को कार्य के अयोग्य तक बना सकती है। इसमें अवस्था या लिंग का कोई विशेष महत्व नहीं होता। यह १० वर्ष से लेकर १०० वर्ष तक के किसी भी स्त्री या पुरुष में पाया जा सकता है। आयुर्वेद में इस बीमारी को आमवात के नाम से वर्णित किया है। इससे मिलती जुलती जोड़ों में होने वाली लगभग ८० से अधिक व्याधियां हैं, परन्तु आमवात के समान वेदना, अंग-विकृति तथा कष्ट देने वाली व्याधि शायद ही कोई हो। आधुनिक चिकित्सा में इससे मिलती जुलती बीमारी को रियूमेटायड आर्थराइटस कहते हैं। इस व्याधि का इलाज ढूंढने के लिये जितना कार्य चिकित्सकों ने आधुनिक पद्धति से किया है उतना संभवतः कैंसर को छोड़कर किसी अन्य व्याधि पर नहीं हुआ परन्तु चिकित्सकों को इसमें विशेष सफलता नहीं मिली।

जीवनीय के इस अंक में हमने कई नए स्तंभ शुरू किए हैं। प्रस्तुत लेख "आमवात" से हम कुछ ऐसी व्याधियों के उपचार - रोकथाम के बारे में बताना शुरू कर रहे हैं जो काफी समय तक इलाज के बाद भी आसानी से ठीक नहीं होती हैं। ऐसे वर्णन से हमारा उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि लोग जटिल व्याधियों का इलाज स्वयं करना शुरू कर दें। हम यह अवश्य चाहेंगे कि ऐसी बीमारियों में पाठक अपने कष्ट को कम करने के कुछ प्रयास कर सकते हैं और आशातीत लाभ के लिए कुशल चिकित्सकों से भी संपर्क कर सकते हैं।

संपादक मंडल

आयुर्वेद में इस बीमारी का कारण अनियमित आहार तथा लम्बे समय तक रहने वाला अग्निमांद्य, जिसके कारण शरीर में एक विशेष प्रकार के द्रव्य का निर्माण होता है, जो "आम" नाम से जाना जाता है। यह धीरे-धीरे पहले छोटी सन्धियों को, बाद में बड़ी सन्धियों को विकृत करता है तथा मांसपेशियों में विकृति उत्पन्न कर शरीर को क्रियाहीन बना देता है। इस व्याधि से पीड़ित व्यक्ति की सन्धियां विकृत होकर अंग को विकृत कर देती हैं। इधर अनेक वर्षों में इस बीमारी का प्रकोप विशेष रूप से बढ़ता दिखाई देता है। इसका कारण संभवतः आहार-विहार में अनियमितता के साथ आधुनिक परिवेश में कूलर या एयरकंडीशनर का अधिक प्रयोग , व्यायाम आदि की कमी तथा कृत्रिम खादों से पैदा किए हुए गेंहू, चावल, साग सब्जी तथा अन्य खाद्य पदार्थ है।

इस कष्टसाध्य व्याधि के सम्बन्ध में अभी तक यही मान्यता रही कि यह एक बार उत्पन्न होने के बाद ठीक नहीं होती है परन्तु अनेक वर्षों से किए गये अनुसंधान के परिणामस्वरुप अब यह निष्कर्ष निकला है कि यदि आमवात उत्पन्न करने वाले कारणों को ध्यान में रखकर इसका इलाज किया जाय तो यह बीमारी पूर्णरूप से ठीक हो सकती है। इसकी चिकित्सा निम्न क्रम से करनी चाहिए-

१. लाक्षणिक चिकित्सा

सबसे पहले जोड़ों में होने वाली वेदना को शान्त करना चाहिए। सन्धि शोथ को कम कर, यदि ज्वर है तो उसको दूर करना भूख बढ़ाने की व्यवस्था करना तथा मलबद्धता को दूर करना चाहिए। जोड़ों का दर्द व सूजन कम करने के लिए पानी में सहिजन और निर्गुण्डी के पत्ते डालकर उबालें तथा उनसे सभी जोड़ों का सेक करें। सेंक के बाद बालू को गरम करके साफ कपड़े की पोटली बनाकर संधियों को सेंकें। इसके साथ साथ सेवन के लिए शुंठी चूर्ण १ ग्रा., सुरन्जान १ डेग्रा. तथा अश्वगंधा चूर्ण १ ग्रा. आपस में मिलाकर प्रातः- सायं पानी के साथ लें।

२.कब्ज दूर करने लिए

--हरीतकी चूर्ण ५ ग्राम रात को सोने के आधा घण्टा पहले कुछ दिन नियमित रुप से लें अथवा अरेंडी का तेल २० मि. ली. खाने वाले आटे में डालकर रोटी बना लें और सायंकाल खाएं। जब पेट साफ रहने लगे तो अरेंडी के तेल का सेवन केवल एक चम्मच ५ मिली. प्रतिदिन करें।

३. संधियों में हुई विकृति को दूर करने के लिए चिकित्सा

नियमित रूप से दशमूलादि क्वाथ या महारास्नादि क्वाथ की भाप से जोड़ों पर सेंक(नाड़ी स्वेद)करायें तथा चिकित्सक के परामर्श से जोड़ों का व्यायाम करें।

--सन्धियों के ऊपर दशांग लेप लगाकर वेदना को शान्त करके उनकी जकड़ाहट को दूर करें।

कृपया देखें पृ. ११

वैद्य एस. ए. खान, सरौरा, सीतापुर

सफल चिकित्सा के सूत्र

अधिकांश लोग आयुर्वेदिक दवा खा लेने को ही आयुर्वेदिक चिकित्सा मानते हैं। ऐसे लोग किताबें पढ़कर या किसी के बताने पर बाजार से आयुर्वेदिक औषधि खरीद कर खाने लगते हैं और लाभ न होने पर आयुर्वेद को बदनाम करते हैं।

आजकल के अधिकांश वैद्य भी रोग का निदान आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साधनों, जैसे एक्स-रे, रक्त-मूत्र-कोलेस्टेरोल-ई.सी.जी. परीक्षण आदि से करके आयुर्वैदिक औषधियां देते हैं न कि रोगी के दोष-प्रकृति का ध्यान रखकर-जो कि अवैज्ञानिक है, क्योंकि आयुर्वेद और ऐलोपैथी के मौलिक सिद्धांत न केवल एक दूसरे से भिन्न है बल्कि कहीं-कहीं एक दूसरे के विपरीत भी हैं। ऐसी स्थिति में एक पद्धति से रोग विनिश्चय करके दूसरी पद्धति के अनुसार औषधि देना नियम विरुद्ध है।

शास्त्रीय आयुर्वैदिक चिकित्सा पूर्णतया सैद्धान्तिक व वैज्ञानिक है जिसका आधार है, त्रिदोष का सिद्धांत। इसके अनुसार मुनष्य की समस्त शारीरिक व मानसिक क्रियाओं को स्वस्थ रूप से चलाने के लिये वात, पित्त और कफ का साम्यावस्था में होना तथा धातुओं और मलों का भी प्राकृतिक रूप में होना आवश्यक है। इनको साम्यावस्था में लाना आयुर्वैदिक चिकित्सा का उद्देश्य है।

वैद्य एस. ए. खान के ये विचार इस पत्रिका के लिए भी विशेष महत्व के हैं क्योंकि जिन औषध-द्रव्यों का वर्णन हम यहां करते हैं उनका उपयोग भी यदि पाठक प्रकृति और दोष का कतई ध्यान किए बिना ही करेंगे तो हो सकता है कि कई परिस्थितियों में अपेक्षित लाभ न हो या कुछ हानि भी हो जाए। इसी कारण हम द्रव्यों का विवरण देते समय उसके शास्त्र सम्मत गुण भी बताते हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कई द्रव्यों के ओषधि गुण व उपयोग एक से ही होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पाठक को चाहिए कि किसी द्रव्य को अपने प्रयोग के लिए चुनने से पहले प्रकृति और दोष आदि का विचार करने का प्रयास करें। इस दिशा में पाठकों की सहायता के लिए हम कुछ सैद्धांतिक लेख भी पत्रिका में समय समय पर देना चाहेंगे।

--संपादक मंडल

आयुर्वेद के कुछ मूल सिद्धांत

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। ह्रासहेतुर्विशेषश्च"।।

अर्थात् समानता से हमेशा बढ़ोतरी और अंतर से कमतरी होती है। जैसे घी, तेल आदि चिकनाई के खाने से शरीर में चिकनाई आती है और मोटापा बढ़ता है। इसके विपरीत हल्की (लघु) एवं रूखी (रूक्ष) चीज़ें जैसे बाजरा, शहद, करेला, सावां, कोदों, हरी पत्तियों के साग आदि खाने से शरीर की चिकनाई और मोटापा कम होता है।

प्रत्येक रोग में तीन दोषों में से कोई एक, दो या तीनों बढ़े हो सकते हैं या कोई दोष ह्रास की स्थिति में हो सकता है। चिकित्सा-योजना का उद्देश्य बढ़े हुए दोष (वात, पित्त, कफ) को घटाना, घटे हुए दोष को बढ़ाना तथा सम दोष को उसी स्थिति में बनाये रखना है।

संसार के सभी मनुष्य सात प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति के होते हैं। ये प्रकृतियां हैं-वात प्रकृति, कफ प्रकृति, पित्त प्रकृति, कफवात प्रकृति, कफ-पित्त प्रकृति, वात-पित्त प्रकृति तथा सम (तीनों का मिला-जुला रूप) प्रकृति। मनुष्य की प्रकृति जीवन भर नहीं बदलती। स्वस्थ रहने के लिये मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुरूप खान-पान और रहन-सहन करना पडता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा में इन सातों प्रकार की प्रकृतियों का बड़ा महत्व है। रोगी की प्रकृति की पहचान किये बिना औषधि देने से आयुर्वैदिक चिकित्सा में सफलता असंभव है। उदाहरण के लिए यदि पित्त प्रकृति के व्यक्ति को सर्दी-जुकाम (वात-कफ ज्वर) हो जाये तो वात और कफ को शांत करने के लिए औषध देने से रोगी में पित्त की वृद्धि होगी और रोगी की प्रकृति पित्तज होने से पित्त के प्रकोप और उससे होने वाले रोगों का भय रहेगा। उसकी नकसीर फूट सकती है यद्यपि उपचार शास्त्र पर आधारित है।

अतः बिना त्रिदोष सिद्धांत और प्रकृति-परीक्षण के किया गया आयुर्वेदिक इलाज वस्तुतः आयुर्वैदिक चिकित्सा न होकर उसका उपहास मात्र है।

औषध- द्रव्य-१

तुलसी

पं. माधवाचार्य, लखनऊ

भारतीय संस्कृति, साहित्य और समाज में तुलसी के पौधे का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि भारत के बाहर भी यह पौधा दो सहस्र वर्ष पूर्व से पवित्र और लोकपयोगी समझा जाता रहा है। जैसे ग्रीक–गिरजों में तुलसी के पौधे को पवित्र मानकर उसको अन्य पौधों से श्रेष्ठ समझा जाता है, तथा भूमध्य सागर के तटवर्ती लगभग सभी देशों में वह एक स्वास्थ्यवर्धक पौधा स्वीकार किया जाता है, कुरआन में भी तुलसी की महिमा बतायी गयी है और इसका रेहाँ नाम से उसमें उल्लेख करके इसे जन्नत का पौधा बताया है। अंग्रेजी में प्रचलित इसके होली बेसिल, सैक्रेड बेसिल, मांक्स बेसिल आदि नाम तथा लैटिन भाषा से प्राप्त वानस्पतिक नाम ओसिमम सैंक्टम इसके सार्वदेशिक महत्व के द्योतक हैं।

भारत में इस वनस्पति का "तुलसी" नाम संस्कृत, हिन्दी, बंगला, गुंजराती, कन्नड़ और तेलुगु भाषाओं में प्रचलित है। मराठी मे इसे "तुळस" कहते हैं, जो तुलसी का ही तद्भव है। परंतु प्राचीन भारत में यह नाम प्रचलति नहीं था। यह शब्द वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य में नहीं उपलब्ध होता। आयुर्वेद की प्राचीन संहिताओं में भी यह नाम नहीं पाया जाता। प्राचीन काल में इसे "सुरसा" और "अपेतराक्षसी" नामों से जाना जाता था।

यों तो वनस्पतिशास्त्रियों ने तुलसीगण की साठ जातियों का आविष्कार किया है और चरकसंहिता में तुलसी की नौ जातियों– सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्वक, गंडीर , कालमालक, पर्णास, क्षवक और फणिज्मक – का चिकित्सा में प्रयोग लिखा है परंतु तुलसी प्रमुख रुप से दो प्रकार की होती है, एक तो सफेद और दूसरी काली। सफेद और काली तुलसी के गुण प्रायः एकसमान हैं। परंतु काली तुलसी में सुगंध अधिक होती है और यह ज्यादा तेज होती है। फलस्वरुप काली तुलसी सफेद की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। तीव्रता के कारण मच्छर इससे बहुत दूर रहना पसंद करते हैं। चरक ने कुछ योगों में सफेद और अन्य में काली तुलसी लेने का निर्देश दिया है

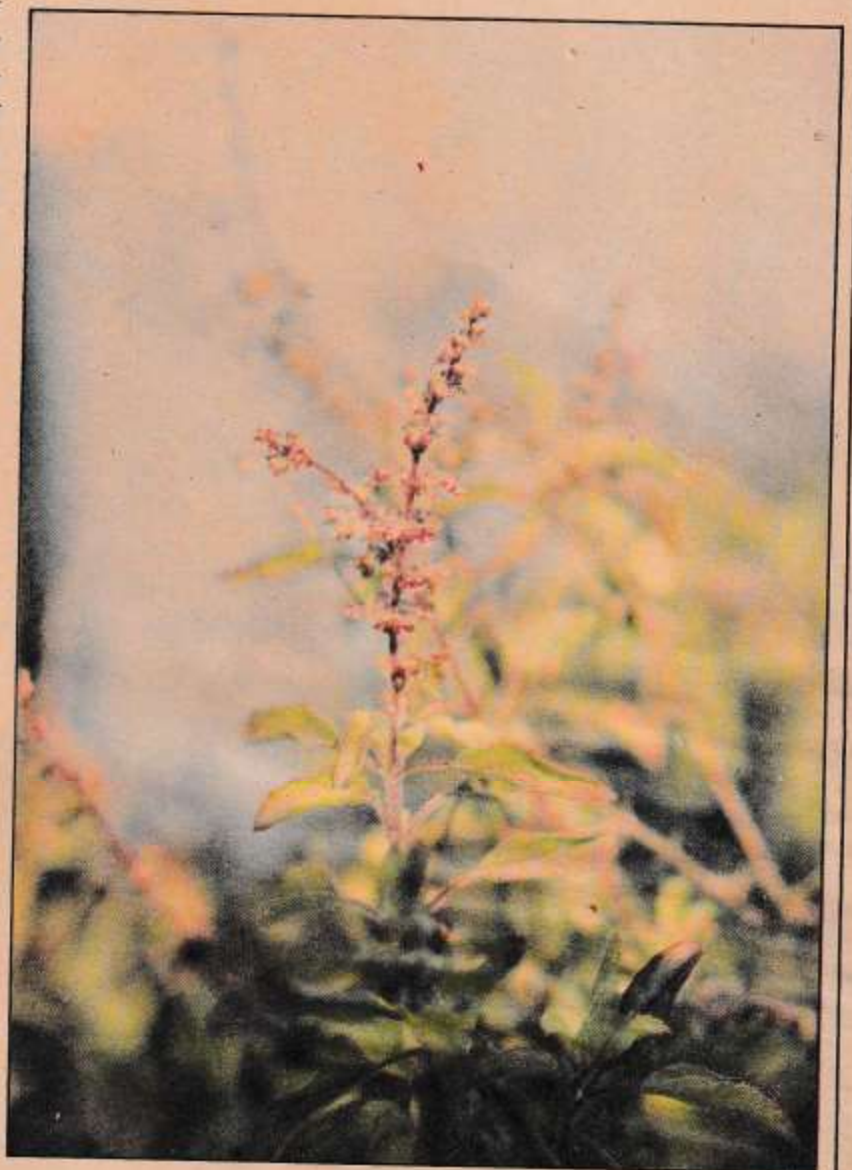

तुलसी

तुलसी

जिससे यह स्पष्ट है कि चरक ने काली और सफेद तुलसी के गुणों में स्पष्ट भेद किया है।

काली तुलसी के पत्ते छोटे और सम्मुखवर्ती होते हैं। इसमें मध्यग्रीष्म में फूल आते हैं और फूल ललाई लिए छोटे, सफेद या धूमिल बैंगनी छटायुक्त होते हैं तथा बीज भूरे रंग के होते हैं।

सफेद तुलसी का तना चौकोर और रोएंदार होता है। इसके पत्ते आकार में अपेक्षाकृत बड़े और दाँतेदार, रोएंदार और सुगंधित होते हैं। फूल की मंजरी बड़ी होती है। बीज हरापन लिये पीले, भूरे या काले तिकोने और जीरे की आकृति के होते हैं। भिगोने पर ये लुआबदार (चिपचिपे) हो जाते हैं। इनका स्वाद हल्का होता है।

वैसे तो तुलसी का सेवन वर्ष भर नित्य करना चाहिए, परंतु वर्षा ऋतु के बाद शरदागम के साथ मलेरिया का प्रकोप होता है, उस समय अर्थात् सितंबर-अतूबर में इसका नित्य नियमित सेवन करने से मलेरिया होने का भय नहीं रहता।

वयस्कों को प्रतिदिन २०-२५ पत्तियों का सेवन करना चाहिए। जाड़े में अधिक पत्तियों का सेवन करें पर गर्मियों में कम। बच्चों को ५-१० पत्तियों का सेवन करना चाहिए। स्वरस का सेवन करना हो तो उसकी मात्रा ५-१० मिली. है। इसके साथ अनुपान के रूप में ५० से ३०० ग्राम तक दही का सेवन श्रेष्ठ है। यदि दही उपलब्ध न हो अथवा पसंद न हो तो शुद्ध मधु अथवा खांड का प्रयोग करें। बच्चों के अनुपान में दही में थोड़ा मधु मिला दें। तुलसी के सेवन में ध्यान रहे कि तुलसी की पत्तियां खाकर अथवा स्वरस पीकर दूध का सेवन किसी भी हालत में न किया जाय।

इसके सेवन का श्रेष्ठ समय प्रातः काल मुंह धोने के पश्चात् है। तुलसी सेवन के आधा घंटा बाद दूध, चाय अथवा नाश्ता लिया जा सकता है। सामान्यतया तुलसी का सेवन दिन में एक बार किया जाता है, किंतु रोग यदि पुराना हो अथवा कठिनाई से ठीक होनेवाला हो तो दो या तीन बार तुलसी की पत्तियां खा सकते हैं अथवा उसका स्वरस पिया जा सकता है।

किसी भी तरह से "जीवनीय" का छपना बंद कराना होगा। इसको पढ़ने के बाद ही लोगों ने तुलसी का पेड़ यहां लगाया है।

इस उपचार से निम्नलिखित व्याधियों तथा अवस्थाओं में पूर्ण लाभ अथवा पर्याप्त लाभ होते देखा गया है:-

औषधीय उपयोग

--सर्दी के कारण **जोड़ों में दर्द** ए पेशियों में **पीड़ा** तथा सर्दी जुकाम की स्थिति में भी तुलसी द्वारा उपचार करने पर रोगी को आराम मिलता है।

--छोटे बच्चों को तुलसी का स्वरस मिली. की मात्रा में प्रतिदिन देने पर उन्हें **बिना कष्ट के दांत** निकलते हैं।

--**मलेरिया बुखार और सर्दी** से **आने वाले तेज बुखारों** में तथा पसली के दर्द में तुलसी की दस-दस पत्तियों का स्वरस शहद मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिए।

--जिन लोगों को आये दिन **सर्दी** की **शिकायत** रहती है, उन्हें तुलसी के स्वरस में, अदरक और पान का रस, काली मिर्च का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए। खांसी होने पर इसी योग में काला नमक मिलाकर सेवन करना चाहिए।

--**पेट में कीड़ों** की शिकायत होने पर तुलसी की पत्तियों को गुड़ के साथ खाना चाहिए।

--**पेट में दर्द, वायु-विकार** आदि अवस्थाओं में तुलसी की १०-१५ पत्तियों में सेंधा नमक मिला कर काढ़ा बनाकर रोगी को पिलाना चाहिए। यह काढ़ा दमें की बीमारी में भी लाभ करता है।

--पुदीना एवं सौंफ के अर्कमें तुलसी का रस मिला कर पिलाने से **उल्टी तुरंत** बंद हो जाती है।

--**कान के दर्द** में तुलसी का स्वरस २-३ बूंद मात्रा में गुनगुना करके डालने से आराम मिलता है।

--तुलसी के पत्तों के साथ लौंग को पीस कर गोली बनाकर दांतों के नीचे दबा लेने से **दांतों का दर्द** मिट जाता है।

--**चर्मरोगों** में भी इसके स्वरस की मालिश करना गुणकारी है।

तुलसी : वनस्पति विज्ञान और आधुनिक अनुसंधान के प्रकाश में

सुगंधित पौधों के प्रजाति की यह झाड़ी संसार के उष्ण तथा समशीतोष्ण क्षेत्रों में सर्वत्र पायी जाती है। इसकी झाड़ी सीधी होती है जिसका तना चिकना और प्रायः रोमरहित होता है। यह मध्य एशिया और उत्तर-पश्चिम भारत का देशज है और भारत में प्रायः सर्वत्र उगाया जाता है।

तुलसी का पौधा काफी ऊंचे तापमान तक में पनप लेता है बशर्ते उसे पानी यथेष्ट मिले। यह ३० डिगरी फारेनहाइट से कम ताप पर नहीं रह सकता। वर्षाबहुल क्षेत्रों में इसकी पैदावार अच्छी होती है। कम वर्षा वाले भूभाग में भी यह बढ़ता है यदि वर्षा का वितरण सम हो औरमिट्टीमें पानी का स्तर काफी ऊपर हो। एक बार जम जाने पर यह सदाबहार पौधों की तरह पनपता है और इसके गुल्म वन वर्षों तक बने रहते हैं।

प्रसार

तुलसी के पौधों का प्रसार बीज या कलम द्वारा किया जा सकता है। मार्च के आधा बीतने पर नर्सरी की क्यारियों में बीज बोये जाते हैं। ७०-१४० ग्राम बीजों से एक हेक्टेयर या इससे भी अधिक भूमि रोपने के लिए यथेष्ट पौधे प्राप्त हो जाते हैं। मानसून के शुरू होते ही पांच-सात सप्ताह के बीजू पौधों को क्यारियों से उखाड़ कर खेतों में रोप दिया जाता है। यदि सिंचाई की व्यवस्था हो तो प्रतिरोपण का कार्य और पहले किया जा सकता है।

प्रायः तुलसी को खाद नहीं दी जाती, मगर खाद डालने से पत्तियों की पैदावार अधिक होती है। इसलिए खाद, कंपोस्ट ऐमोनियम सल्फेट या मिश्र खाद डालना उपयुक्त रहेगा। पौधों के रोपने से पहले खेतों में जैव खाद डालनी चाहिए और पौधों में फूल आने से तीन-चार सप्ताह पहले रासायनिक खाद डालनी चाहिए।

औषधीय प्रयोग

विभिन्न रुग्ण अवस्थाओं में तुलसी की विभिन्न जातियां उपयोगी बतायी गयी हैं। इसी अंक में अन्यत्र बताये गये उपयोगों के अतिरिक्त इसके कुछ अन्य प्रयोग निम्नलिखित हैः-

-दांतों के दर्द में तुलसी की पत्तियों के गुनगुने काढ़े से कुल्ला करने से लाभ होता है।

-पत्तियों को बारीक पीसकर लेप करने से पराश्रयी चर्म विकारों में लाभ होता है।

-मलेरिया बुखार में तुलसी की जड़ का काढ़ा पिलाने से रोगी को खूब पसीना आता है और आराम होता है।

-सिरदर्द और जोड़ों के दर्द में संपूर्ण पौधे का काढ़ा दिन में दो बार १०-१५ मिली लेना चाहिए।

हाल के वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि इसकी पत्तियों का स्वरस **जीवाणुनाशक, अतिसारनाशक, कृमिनाशक और निद्राकर** है। साथ ही यह उत्तेजक और कफनिस्सारक होने के कारण गले की खराश भी मिटाता है।

तुलसी के समूचे पौधों से प्राप्त तेल **कीटनाशक तथा टीबी के जीवाणुओं का भी नाशक है।** तुलसी के बीज मूत्र एवं पसीना बढ़ाते हैं, उल्टियों को रोकने और लसदार होने के कारण उत्तेजना का शमन करते हैं।

-डा. पी. एन. मिश्र
तथा डा. आनन्द प्रकाश, लखनऊ

महाराष्ट्र के आदिवासियों द्वारा तुलसी का प्रयोग

तुलसी को महाराष्ट्र में लोग तुलस नाम से जानते हैं। महाराष्ट्र के आदिवासी, पेशाब में जलन होने, पेशाब कम होने पर, लू लगने पर तथा प्रमेह में तुलसी के बीजों का चूर्ण प्रयोग करते हैं। जूड़ी-ताप में तुलसी की पत्तियों का स्वरस या काढ़ा बनाकर प्रयोग करते हैं।

--दलित मित्र गंगाराम जानू आवारी

पृष्ठ७का शेष

आमवात....

--महारास्नादि क्वाथ ४० मि. ली. प्रातः-सायं उतनी ही मात्रा में पानी मिलाकर लें।

--सिंहनाद गुग्गुलु २ गोली प्रातः एवं २ गोली सायं पानी के साथ लें।

४. व्याधि पुनः न उत्पन्न हो इसके लिए निम्न पथ्यापथ्य का ध्यान रखें।

--आहार-रोटी, दाल, मूंग या अरहर लौकी, तोरई, परवल, पालक, अदरक, लहसुन आदि सुपाच्य द्रव्य लें।

विशेषः- टमाटर, घुइयां, दही, राजमा, उड़द दाल तथा मछली का सेवन न करें।

नियमित रूप से प्रातः काल टहलें परन्तु ठंडक से बचने के लिए यथेष्ट कपड़े अवश्य पहने रहें।

प्रिय पाठक,

" जीवनीय " का प्रकाशन, लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस) के सदस्य संगठनों एवं कार्यकताओं के सक्रिय सहयोग द्वारा भारत की लुप्तप्राय होती स्वास्थ्य की बहुमूल्य स्थानिक परंपराओं के विकास के लिये राष्ट्रीय स्तर पर शुरु किए गए आंदोलन का भाग है।

पाठकों से अनुरोध है कि लोस्वापसंस तथा जीवनीय पत्रिका के सक्रिय सदस्य बन कर इस आंदोलन में अपना सहयोग दें तथा अपनी वाटिकाओं में औषधीय पौधे लगाकर व उनका प्रयोग करके स्वास्थ्य के सामान्य विकारों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ ले सकें।

--संपादक मंडल

शिरीष या सिरस

वैद्य भा. वि. साठये, नागपुर

शिरीष

विषनाशक वनस्पतियों में श्रेष्ठ यह प्रायः समस्त भारतवर्ष में पाया जाने वाला वृक्ष है। शिरीष का वृक्ष तीन से लेकर पांच मीटर तक ऊंचा होता है और इसकी पत्तियां इमली की पत्तियों जैसी लेकिन उनसे कुछ बड़ी होती है। इस पर हरे पीले रंग के फूल आते हैं जो सुकुमार और सुगंधित होते हैं। इसमें १५ सेंमी से लेकर ३० सेंमी तक लंबी, चपटी और चौड़ी फलियां लगती हैं। जिनमें १०–१२ भूरे रंग के बीज होते हैं।

भाषावार नामः हिन्दी––सिरस, सिरिस; संस्कृत, बंगला– शिरीष; मराठी– शरस; गुजराती– सरसडो, कालीयो सरस; पंजाबी– सरींह, सिरिंह; तमिल– चिरीदम शिरीदम; मलयालम– वाक; तेलुगु– दिरीसनमु, गिरीशमु; अंग्रेजी– सिरिस ट्री; लैटिन–––आलबिज्जिया लेब्बेक।

औषधीय उपयोग

––गर्दन पर छोटी गांठ उभर आये तो २–३ ग्राम सिरस के बीज का चूर्ण खायें तथा बीजों को पानी में पीसकर गांठ पर लेप करें। यदि दो सप्ताह में भी लाभ न हो तो चिकित्सक से संपर्क करें।

––सिरस की छाल का बारीक चूर्ण मसूढ़ों के लिए अत्यंत हितकर है। इससे मंजन करने से **मसूढ़ों** से रक्त आना बंद हो जाता है और मसूढ़ों की तकलीफ जाती रहती है।

––पेशाब करते समय जलन आदि होने पर सिरस की पत्तियों की चटनी पीसकर उसमें शक्कर और पानी मिलाकर पिलायें। लाभ न होने पर कुशल चिकित्सक से संपर्ककरें।

––आधाशीशी दर्द में सिरस की हरी पत्तियों को कूट कर कपड़े की पोटली से निचोड़ कर प्राप्त स्वरस की दो–तीन बूंदें जिस ओर दर्द हो उस ओर के नथुने में डालते है। इसके लिए रोगी को पहले इस प्रकार लिटाते हैं कि उसके नथुने आकाश की ओर हो जायें। नाक में दवा छोड़ने की इस विधि को नस्य कहते हैं। ध्यान रहे कि अन्य प्रकार के दर्दों में लाभ न होने की स्थिति में चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

––पित्ती उछलने की बीमारी में त्वचा पर लाली हो आती है और लाली लिए हुए चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें बड़ी जलन होती

जीवनीय-औषधि

गिलोय

वैद्य उमेश चन्द्र शर्मा, लखनऊ

गिलोय भारतवर्ष में सभी जगह पाई जाती है। यह पेड़ों पर फैलने वाली एक लम्बी बेल है। इसकी शाखाओं से रस्सी (डोरे) के समान जड़ें निकलकर भूमि की ओर लटकती रहती हैं। इसके पत्ते पान के समान १०-१२ सेमी. के घेरे में होते हैं। ये चिकने, पतले ७-९ शिराओं (जाल) से युक्त होते हैं। प्रायः वसन्त ऋतु (मार्च-मई) में इसके पुराने पत्ते पीले होकर गिर जाते हैं और ज्येष्ठ मास (मई-जून) में नये पत्ते निकल आते हैं। इसी समय हरापन लिये हुये पीले रंग के अथवा केवल पीले रंग के फूलों के गुच्छे आते हैं। इसके फल-मटर की तरह और पकने पर लाल हो जाते हैं तथा बीज कुछ टेढ़े तथा चिकने होते हैं।

ताजे तने की छाल हरी तथा गूदेदार रहती है तथा उस पर पतली सी भूरे रंग की बाहरी झिल्ली रहती है जो पपड़ी के रूप में उचटती रहती है और इस पर छोटे-छोटे गड्ढे होते हैं। इसको काटने से अंदर का भाग चक्राकार दिखाई पड़ता है। ताजी व हरी गिलोय ज्यादा लाभकारी व गुणकारी होती है।

मई माह के आखिर में इसका औषधीय प्रयोग के लिये संग्रह कर लेना चाहिये क्योंकि इस समय गिलोय में उपस्थित कार्यकारी तत्व अधिक कार्य शील होते हैं।

भाषावार नाम :

भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न भाषायें होने के कारण गिलोय के अनेक नाम हैं इसको हिन्दी में- गिलोय, गुरुच, गुडुच नाम से पुकारा जाता है। बंगला में- गुलंच; पाली, गुजराती में- गली; कन्नड़ में- मृतबळ्ळि, अमृतवल्ली ; तेलुगु में- तिप्पतीगे; तमिल में- अमृडवल्ली, शिब्दिलकोडि; पंजाबी में- गिली; अंग्रेजी में- गिलोय नाम से जाना जाता है। इसकी दो प्रजातियां हैं जिन्हें लैटिन में टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया तथा टिनोस्पोरा मलाबारिका कहते हैं दूसरी प्रजाति दक्षिण प्रदेशों में अधिक मिलती है।

औषधीय गुण व उपयोग

चिकित्सा में गिलोय के तने का प्रयोग किया जाता है। गिलोय स्वाद में कड़वी, कसैली, परंतु पचने पर मधुर व भारी है। यह रक्तशोधक, रक्तवर्धक, चर्मरोगों को दूर करने वाली, हृदय को बल प्रदान करने वाली, शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने वाली, और पुराने बुखारों में लाभकारी है। इसके गुणों के कारण इसको अमृता (अमृत के समान गुण वाली) भी कहा जाता है।

बुखार : बार-बार चढ़कर उतरने वाले बुखार में ताजी गिलोय के छोटे-छोटे टुकड़े कर, इनका रस निकाल लेते हैं। फिर इस रस की ५ मिली की मात्रा शहद के साथ दिन में २-३ बार लेने से बुखार उतर जाता है। यह मात्रा कम से कम तीन या चार दिन तक पीना चाहिये।

त्वचा के रोगों : गिलोय के लगभग ५० से.मी. तने को तोड़कर इसके छोटे-छोटे टुकड़े काटें इन टुकड़ों का काढ़ा तैयार कर लें इस काढ़े की १० मि.ली. मात्रा सुबह-शाम प्रतिदिन लेना चाहिये। त्वचा के पुराने रोगों जैसे सफेद दाग, चकते, खुजली आदि में गिलोय का काढ़ा अधिक दिनों तक प्रयोग करना चाहिये।

कामला या पीलिया : पीलिया रोग में गिलोय का स्वरस ५ मि.ली. की मात्रा में शहद के साथ मिलाकर सुबह पीना चाहिये। इससे बढ़ा हुआ पित्त मल के साथ बाहर निकल जाता है और रोगी को लाभ होता है इसके साथ-साथ यह यकृत को बल भी प्रदान करता है।

वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान करके गिलोय में रोग-प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने का गुण पाया है।

विशेष : नीम के पेड़ पर चढ़ी हुई गिलोय औषधीय गुणों के लिये श्रेष्ठ मानी गयी है।

गिलोय सत्व : गिलोय का स्वाद कड़वा होने के कारण इसके स्वरस या काढ़े का प्रयोग न करके इसका सत्व प्रयोग कर सकते हैं। इसके बनाने की विधि निम्न है :-

"अच्छी मोटी गिलोय को बरसात के पूर्व संग्रह कर, ऊपर की पपड़ी छुड़ाकर, साफ जल से धो लें फिर इसके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर, साफ खरल में डालकर कूट लें इस कुटे हुये भाग को स्वच्छ बर्तन में एकत्र कर, चार गुना पानी डालकर, रात भर भीगने दें। सुबह अच्छी तरह मसलकर कपड़े से छान लें। सत्व नीचे बैठ जायेगा। ऊपर का जल धीरे-धीरे निथारकर नीचे बचे हुए सत्व को सुखाकर शीशी में रख लें इसी सत्व का १-२ ग्राम की मात्रा में प्रयोग करें। बाजार में बना बनाया गिलोय सत्व भी मिल जाता है। ■

वैद्य जयप्रकाश अवस्थी, लखनऊ

बिभीतक - बहेड़ा

बहेडा सर्वसुलभ औषधि है, जो कफ को निकालने, पेट साफ करने, भूख बढाने और बैठे हुए गले को ठीक करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

प्रायः सभी लोग त्रिफला को अच्छी तरह से जानते होंगे, भले ही वे बिभीतक से परिचित न हों। त्रिफला में पहला द्रव्य हरीतकी (हरड़,) दूसरा बिभीतक (बहेड़ा) तीसरा आंवला है। बिभीतक को ही व्यवहारिक भाषा में बहेड़ा कहते हैं। त्रिफला के साथ बहेड़े का प्रयोग अति प्राचीन काल से ही विभिन्न रोगों को दूर करने के लिये किया जाता रहा है किन्तु बहेड़ा का अकेले ही प्रयोग भी कई रोगों में किया जाता है। इस का लैटिन नाम "टर्मिनेलिया बेलेरिका" है जो "काम्ब्रेटेसी" या "हरीतकी कुल" का ही है। बिभीतक का अर्थ होता है "विगत रोगभयमस्मात्" अर्थात जिसके सेवन से रोगों का भय जाता रहता है। बिभीतक का एक और पर्याय है कर्षफल अर्थात इसका फल एक कर्ष (लगभग २० ग्राम) के वजन का होता है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बहेड़े को श्लेष्महर द्रव्यों में माना गया है यानी कफ को निकालने वाला द्रव्य, अर्थात् बहेड़ा कफज रोगों को दूर करने वाला है।

वानस्पतिक परिचय

इसका वृक्ष लगभग १५ से २५ मी. ऊंचा होता है जिसका काण्ड (तना) सीधा एवं कठोर होता है तथा छाल गहरे भूरे रंग की होती है। पत्ते ८ से २० सेमी लम्बे एकान्तर एवं चौड़े होते हैं। इसके पुष्प सफेद या हल्के पीले रंग के मंजरियों में होते हैं। इसके फल लगभग एक इंच व्यास के धूसर वर्ण के होते हैं जो सूखने पर मखमली रंग के हो जाते हैं। व्यवहार में इन्हीं फलों का प्रयोग बहेड़ा नाम से किया जाता है।

बहेड़ा

यह प्रायः समस्त भारत में १००० मी. की ऊंचाई तक तथा श्रीलंका एवं बर्मा के जंगलों में भी पाया जाता है। इसको कहीं भी बगीचे आदि में भी सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। इसके छोटे-छोटे पौधे लेकर नम मिट्टी में लगाने से वृक्ष जल्दी तैयार हो जाता है। प्रायः इसको बरसात के मौसम में ही लगाया जाता है। इसके पके हुये फलों को एकत्रित करके गुठली निकाल कर फिर फल को छाया में सुखाकर मुखबंद बर्तन में रख लेते हैं। इसी का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है।

औषधीय प्रयोग--इसका मुख्य रूप से श्वासावह संस्थान अर्थात कफ से उत्पन्न व्याधियों में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा यह जठराग्नि अर्थात भूख को बढ़ाता है। इसका अधपका फल कब्जियत दूर करता है तथा पूरा पका फल अतिसार पतले दस्त, प्रवाहिका आंव वाले दस्त में भी अच्छा लाभ करता है। यह कषाय रस का होता है अतः इसका प्रयोग रक्तस्राव को रोकने के लिये भी किया जाता है। यह मधुर विपाकी होने से धातुवर्धक भी है।

व्यावहारिक रूप में किसी भी प्रकार की सूजन तथा दर्द को कम करने के लिये इसके फल को घिसकर लेप करते हैं। इसके तेल का प्रयोग सभी चर्मरोगों में जैसे सफेद दाग तथा खालित्य (बालों के न होने) में किया जाता है।

अभी भी गांवोंमें इसके फल के टुकड़े को भूनकर मुख में रख कर चूसने से खांसी, जुकाम, श्वास तथा स्वर भंग (गला बैठना) में तत्काल बहुत लाभ उठाते हैं। आयी हुयी आंख में दर्द कम करने के लिये इसके फल को घिसकर उसका लेप आंख के ऊपर लगाने से दर्द और सूजन ठीक हो जाती है।

यद्यपि वर्तमान में इसका त्रिफला के रूप में ही अधिक प्रयोग किया जाता है किन्तु उपर्युक्त बहुत से रोगों में इसका प्रयोग अकेले

कृपया देखें पृ. ३८

मातृ एवं बालोपयोगी द्रव्य-१

शतावरी

शतावरी भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्पन्न होती है पर यह विशेषकर उत्तरी भारत में अधिक होती है। इसका पौधा कांटेदार, बहुवर्षायु, लता की तरह अनेक शाखाओं से युक्त, फैला हुआ रहता है। इसके पत्ते काँटे के समान नुकीले और पतले ०.५-१ सेमी लंबे तथा कुछ टेढ़े होते हैं। फूल सफेद छोटे तथा सुगंधित और गुच्छों में आते हैं। फल छोटे -छोटे, गोल तथा पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। इनमें १-२ बीज रहते हैं। इसकी जड़ से सफेद रंग की लम्बी-गोल परंतु दोनों सिरों पर पतली कंद निकलती हैं जिनका चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

भाषावार नाम

लैटिन : एसपेरेगस् रेसिमोसस्।

हिन्दी : सतावर , सतावरि, शतावरी।

तमिल : पाणियनाकु।

तेलुगु : चल्ला।

औषधीय गुण

शतावरी शरीर का बल बढ़ाने वाली, हृदय को बल प्रदान करने वाली, शुक्र धातु बढ़ाने वाली, स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, नाड़ी तथा मस्तिष्क के लिये बलकारक, सूजन कम करने वाली एवं गर्भपोषक है।

चिकित्सीय उपयोग :

दूध बढ़ाने के लिये : बच्चे के जन्म के पश्चात कुछ स्त्रियों के स्तनों में दूध के न उतरने की शिकायत रहती है अतः इन स्त्रियों को शतावरी की जड़ का चूर्ण २-३ ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम, १ गिलास गाय के दूध के साथ सेवन करना चाहिये, ऐसा करने से २-३ दिन में ही दूध उतरने लगता है। इसका प्रयोग प्रसव के बाद ५-६ माह के बाद तक करना चाहिये। इसके प्रयोग से स्त्रियों का शारीरिक बल भी बढ़ता है।

अतिसार व पेचिश में : यदि गर्भवती स्त्री को अतिसार व पेचिश रोग हो जाये तो शतावरी मूल का चूर्ण २-३ ग्राम की मात्रा में सुबह-दोपहर-शाम , ताजे पानी के साथ लेना चाहिये।

ल्यूकोरिया (सफेद स्राव) : कुछ गर्भवती स्त्रियों को २-४ माह के बीच ल्यूकोरिया की तकलीफ हो जाती है इस अवस्था में भी शतावरी मूल का चूर्ण २-३ ग्राम की मात्रा में १ गिलास गाय के दूध के साथ प्रतिदिन लेने से लाभ होता है और साथ ही साथ गर्भवती स्त्री तथा पल रहे शिशु को भी पोषण मिलता है।

"शतावरी घृत"

शतावरी घृत स्त्री के लिये उत्तम पोषक व गुणकारी औषधि है जिसको घर में निम्न लिखित विधि द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है।

शतावरी के पूरे पौधे (पंचांग) का स्वरस, गाय का घृत व गाय का दूध, संबंधित आवश्यकतानुसार समान मात्रा एक स्वच्छ कलई दार पीतल की कढ़ाई में चढ़ाकर धीमी-धीमी आँच में पकाते हैं।जब पक कर घृत गाढ़ा हो जाय तो उतारकर ठंडा कर और किसी स्वच्छ पात्र में भरकर रख दें। इसको १-२ चम्मच की मात्रा में सुबह-शाम २-३ माह तक सेवन करना चाहिये। इस घृत के सेवन से प्रसव के बाद उत्पन्न होने वाले

एक देशी चिकित्सक का अनुभव

वेडापावल नामक गांव में नरपत जेरमा पाडवी रहता है। उसे दो वर्षों से बहुमूत्र (बार-बार पेशाब होना) की शिकायत थी। वह डाक्टरों से इलाज कराता और एक दो दिन ठीक रहता और फिर बहुमूत्र की शिकायत हो जाती। उसने लोगों की बतायी हुई औषधियां कीं पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ।

अंत में वह मेरे पास आया। मैंने उससे पूछताछ की-- पेशाब करते समय उसे बहुत जलन होती थी, सफेद द्रव्य पेशाब के रास्ते निकलता और कमजोरी महसूस होती।

मैंने जेरमा को तालमखाना का क्षार दिया। और रात में सोते समय चुटकी भर पानी के साथ तीन दिन तक लेने को कहा। तीन दिनों तक इस क्षार के सेवन से वह ठीक हो गया।

इसके बाद १५ दिनों बाद वह मिला। उस समय वह रोग से मुक्त था और अब नरपत बड़े मजे से रह रहा है।

--तुकाराम गिरजी पाडवी, धुले

शतावरी, माँ का दूध बनाने, व बढ़ाने के साथ-साथ उसके स्वास्थ्य के लिए एक हितकारी औषधि और टानिक भी है।

विकार जैसे - खून की कमी, कमजोरी, भूख न लगना इत्यादि दूर होते हैं तथा गर्भाशय को बल मिलता है।

(लोस्वापसंस द्वारा एकत्रित जानकारी पर आधारित)

पान

भारतीय संस्कृति, रीति रिवाज व इतिहास से पान का घनिष्ठ संबंध है। भारत के हर उम्र के लोग इसे प्रयोग करते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं जैसेः– बनारसी, मघई, कपूरी, साँची, बंगला, महोबा, मालवी आदि। पान का पौधा, लौकी या ककड़ी की बेल के समान बहुवर्षीय फैलनेवाला होता है। इसके पत्ते चौड़े, गोलाई लिये हुये और आगे से नुकीले होते हैं। भारत में ऐसी मान्यता है कि पान में फल बिल्कुल नहीं या बहुत ही कम आते हैं क्योंकि यहां नर बेल बोने का ही प्रचलन है, अतः यहाँ पर पान के फल नहीं देखे जाते।

पान विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। इसको संस्कृत में "नागवल्ली" या "ताम्बूल", हिन्दी व बंगला में "पान", तेलुगु में "थमलपाकु" तमिल में "बेत्तिलय", कन्नड़ में "वील्यदेले", मलयालम में "बेत्तिला" आदि नामों से जाना और पुकारा जाता है। इसका लैटिन नाम पाइपर बेटेल है।

पान की खेती

पान सम्भवतः मलेयशिया का मूल निवासी है किन्तु आजकल भारत के कई प्रान्तों में पान की काफी खेती की जा रही है। पान ज्यादातर उन जगहों पर लगाया जाता है जहाँ नमी काफी होती है। उत्तर भारत में यह कृत्रिम रुप में बरेजा में भी उगाया जाता है इससे पौधों को उपयुक्त नमी व तापमान मिल सके। ये कृत्रिम बरेजे घास, फूस व बांस की टटिट्यों में बनाये जाते है। इन बरेजों में पान का रोपण मार्च/अप्रैल माह में किया जाता है। पान की नर बेलों का ही रोपण किया जाता है तथा ऊपर से घास से उन्हें ढक दिया जाता है। जब पान लगभग एक माह का हो जाता है तो उसकी बेलों को सहारे के साथ ऊपर चढ़ाया जाता है। पान में नीम की खली की खाद काफी उपयुक्त होती है। यह खाद वर्षा ऋतु में डाली जाती है। ढाई से तीन माह के पौधे पान देने लगते हैं तथा पूरे वर्ष में लगभग ८० पान एक बेल में लगते हैं। फरवरी–मार्च में इन बेलों का ऊपर का भाग पुनः रोपण में प्रयोग कर लिया जाता है तथा नीचे का भाग जमीन पर लिटा दिया जाता है जो नयी फसल को जन्म देता है। उत्तर भारत में एक बार लगाये गये पौधे लगभग तीन साल तक चलते हैं।

उपयोग

पान खाने का अच्छा तरीका यह है कि आवश्यकतानुसार पान के दो–तीन पत्ते लेकर उनकी नसें साफ कर दें, उसके बाद भिगोया गया कत्था और थोड़ा चूना लगाकर और बारीक की हुई थोड़ी सी सुपारी मिलाकर खाएं। पान चबाने से मुंह के अन्दर पहले जो राल पैदा हो उसे थूक देना चाहिये। पान की पीक को कभी भी नहीं निगलना चाहिए वरना मेदे में जख्म हो सकता है। पीक निगलने से पेट में दर्द भी हो सकता है। पान की खुश्की कम करने के लिये उसमें तीन या चार दाने बादाम के या इलायची मिलाकर भी खाते हैं। इसी प्रकार कुछ शौकीन लोग पान के साथ एक या दो दानें लौंग भी खाते हैं।

औषधीय गुण

–पान की पत्तियों में तेज चरपरी, सुगंधित स्वाद की गंध होती है। पान चबा कर खाने से मुख में एक रस बनता है जिससे **मुख की खुश्की** दूर होती है, **प्यास भी** कुछ मिटती है तथा **मसूढ़े व दांत** मजबूत होते हैं।

–पान के हरे, ताजे पत्ते खाने से **फेफड़ों से बलगम** आसानी के साथ बाहर निकलता है। इस गुण के कारण इसका शहद के साथ प्रयोग **जुकाम व सर्दी** के कारण उत्पन्न **खांसी** में लाभकारी होता है।

–अगर सर्दी की वजह से या जोर से ज्यादा बोलने के कारण **आवाज बैठ गई हो**

कृपया देखें पृ. ४२

ठीक है, पान खाने के बहुत फायदे हैं इसका मतलब यह नहीं, कि दिन भर बकरी की तरह मुंह चलाते रहो, "अति" हर चीज की बुरी होती है।

क्या पोल्ट्री अंडों का प्रचार शुभ है?

वैद्य रमेश म. नानल, बंबई

आजकल प्रचार माध्यमों से रोज पोल्ट्री के अंडे खाने का आग्रह किया जाता है। इनमें प्रोटीन है, विटामिन हैं इत्यादि अनेक बातें बताकर इन्हें रोज खाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। कुक्कुट-पालन आज एक उद्योग है। उससे होने वाले आर्थिक लाभों का प्रश्न अलग है, लेकिन क्या पैसा ही सब कुछ है? यह सवाल अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि कई बातें पैसे से अधिक महत्वपूर्ण हैं जैसे, स्वास्थ्य या निरोगी जीवन। क्या वास्तव में पोल्ट्री अंडे और मुर्गियां खाकर लोग स्वस्थ या निरोगी रह सकते हैं? क्या इनमें केवल शरीर के लिए हितकर पदार्थ ही हैं? क्या इन्हें रोज के आहार में रखना चाहिये? क्या बैठे-बैठे बौद्धिक व्यवसाय करने वालों और रोगियों के लिए भी रोज पोल्ट्री अंडे खाना हितकर होगा?

नहीं, यह दुष्प्रचार है

उद्योगों को जब बढ़ावा दिया जाता है तो उनका उत्पादन भी बढ़ता है। अब यह उत्पादन ऐसा है कि जिसे अधिक समय तक रखा नही जा सकता अतः उसे जल्द से जल्द बेचना अनिवार्य हो जाता है। भले ही उसका समाज पर परिणाम कुछ भी हो। उसकी चिन्ता उद्योगपतियों को नहीं होती है पर समाज को तो खबर लेनी ही होगी कि कहीं उसे उल्टी राय तो नहीं दी जा रही है।

क्या पोल्ट्री के अंडों में घातक द्रव्य होते हैं?

आपको विश्वास नहीं होगा परंतु यह एक तथ्य है। यही तर्क-संगत भी है। मुर्गी एक पक्षी है और अंडे उसके बीज हैं जो उसके शरीर से बनते हैं। हर प्राणी का शरीर आहार से बनता है, मुर्गी का भी। पोल्ट्री में मुर्गियों को खूब जल्दी बढ़ाकर अल्पकाल में ही अधिक से अधिक अंडे देने के निमित्त विशिष्ट प्रकार का आहार और कई बार अनावश्यक औषधियां भी दी जाती हैं।

अब पोल्ट्री में मुर्गियों की आवास व्यवस्था पर ध्यान दीजिये। एक-एक पिंजरे में इतनी मुर्गियों भरी जाती हैं कि उन्हें हिलने तक की जगह मुश्किल से मिल पाती है। इससे स्पष्ट है कि उन मुर्गियों का व्यायाम बिल्कुल ही नहीं होता। जो प्राणी व्यायाम कम करते हैं उन्हें अन्न की आवश्यकता भी कम पड़ती है। इसी प्रकार जो प्राणी अधिक व्यायाम कर पाते हैं उन्हें अधिक आहार की भी जरूरत होती है। ज्यादा से तात्पर्य मात्रा और गुणवत्ता दोनों से है, क्योंकि शरीर अन्न को व्यायाम या श्रम द्वारा ही पचाता है। पोल्ट्री में मुर्गियां किसी प्रकार का कोई व्यायाम नहीं करतीं परंतु खाने के लिए अधिक मात्रा में पोषाहार प्राप्त करती है। परिणामतः वे खाये हुए अन्न का पाचन नहीं कर पातीं इसके कारण उनके शरीर में जो घटक बनते हैं उनमें अर्धपक्वता (आम) होती है। इसी कारण उनके शरीर से दुर्गंध भी आती है। उनका मल भी सफेद और अधिक दुर्गंध युक्त होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि पोल्ट्री की मुर्गियां अन्न और औषधि को पचा नहीं पाती। यही बात उनके शरीर से निर्मित अंडों में भी पायी जाती है। पोल्ट्री के अंडों में दुर्गंध, दवाइयों की गंध, चिकनापन एवं जल्दी खराब होने का स्वभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह अर्धपक्व (आम) पदार्थ यदि हम रोज खाने लगे तो क्या हम स्वस्थ रह सकेंगे? इस प्रश्न का सीधा और तार्किक उत्तर है, "नहीं"।

खाद्य पदार्थ कैसा हो?

प्राणि-जन्य आहार खाते समय विशेष ध्यान रहे कि वह प्राणी जिससे खाद्य बना है, स्वस्थ हो। उसकी शारीरिक रोग प्रतिकार क्षमता उत्तम होनी चाहिए। उसे दिया जाने वाला अन्न उचित मात्रा में और उचित गुणों से युक्त हो। प्राणी को उत्तम रूप से व्यायाम मिलता हो आदि अनेक विचारणीय बाते हैं। यह औचित्य उस प्राणी के शरीर का विचार कर निर्धारित करना आवश्यक है न कि उसके भक्षक मनुष्य की आवश्यकता के आधार पर। जैसा कि पहले बताया गया है, पोल्ट्री की मुर्गियों में वे बातें नहीं मिलती हैं। वहां मुर्गियां आवश्यकता से अधिक खाती हैं और आवश्यकता से कहीं अधिक गुणवान अन्न अधिक मात्रा में खाती हैं। मानव को जल्दी से अधिक मांस मिलने के लिए उन्हें औषधियां और अन्न दिये जाते हैं न कि उनकी आवश्यकतानुसार। इन मुर्गियों की रोग निरोध क्षमता स्पष्ट है कि अत्यन्त हीन दर्जे की होती हैं।

इसलिए पोल्ट्री मुर्गियां व उनके अंडे दोनों ही नित्य खाने के योग्य कदापि नहीं है। उन्हें नित्य खाने से "आम" जन्य अनेक रोग हो सकते हैं। जोड़ों का दर्द, हृदय रोग, पक्षाघात , अन्धत्व आदि अनेकानेक रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

पोल्ट्री के अंडे कौन खा सकते हैं?

इन्हें वे ही खा सकते हैं जिनकी पाचन शक्ति उत्तम है और जो शारीरिक परिश्रम के काम करते हैं, जो अत्यधिक व्यायाम या खेल-कूद करते हैं। उन्हें भी रोज इन अंडों को नहीं खाना चाहिए। हेमंत ऋतु यानी जाड़े का मौसम इन अंडों के खाने के लिए उचित समय है क्योंकि इस ऋतु में पाचन शक्ति नैसर्गिक रूप से उत्तम होती है। जिसका शरीर सूखता जा रहा है, ऐसे लोगों को युक्तिपूर्वक संस्कारित करके ही ये अंडे दे सकते हैं। नपुंसकता के कुछ प्रकारों में भी इन्हें संस्कार कर प्रयोग में ला सकते हैं।

कृपया देखें पृ. ३८

रसीली मूली

मूली एक रसीला, क्षारीय और तीक्ष्ण स्वाद वाला कंद है जो सभी का सुपरिचित है।

आयुर्वेद के अनुसार छोटी मूली कड़वी, चरपरी हृदय के लिए बलदायक, रुचिकर, त्रिदोष का शमन करने वाली तथा स्वर में निखार लाने वाली होती है पर बड़ी या मोटी मूली तीक्ष्ण, पचने में कठिन और गैस बनाने वाली तथा त्रिदोषकारक है किंतु बड़ी मूली को तेल या घी में भून लिया जाय तो वह लाभदायक होती है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसे भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे : हिन्दी- मूली, मुरई, मूरा, संस्कृत - मूलक, नागदन्ती, हरिपर्णी, बंगला - मूला, मराठी- मुला, गुजराती- मूली, पंजाबी- मुरि, कन्नड़ एवं तमिल- मुल्लंगि, तेलुगु - मुलगीं, अंग्रेजी - रैडिश, लैटिन - रैफेनस सेटाइवस।

मूली प्रायः शरद ऋतु में होती है। यह १५ सेमी. से ४५ सेमीं. तक लंबी और उसी अनुपात में मोटी होती है। जब इसका पौधा पक जाता है तब इसमें फली लगती है, जिसमें बीज होते हैं, फलियां दो-तीन अंगुल तक लंबी होती हैं। इन्हें सेंगरी या मूंगरे कहते हैं। पक आने पर इनके भीतर से गोल , ललाई लिये हुए भूरे रंग के राई के समान बीज निकलते हैं। मूली की नरम पत्तियां, फूल, फलियां और कंद सभी की तरकारी बनती है। कंद का स्वरस और बीजों का चूर्ण भी औषधि के रूप में काम आता है।

औषधीय प्रयोग

पेट में गैस हो जाने और डकार न आने पर बड़ा कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में भोजन के साथ-साथ कच्ची नरम मूली काट-काट कर खायें। मूली आमाशय में देर तक टिकी रहती है और वायु को बाहर निकालती है, इसलिए इस प्रयोग, से काफी राहत मिल जाती है। जब पेट में गैस बनने लगती है और उतरकर बाहर नहीं निकालती तब पेट-दर्द, बेचैनी, उलझन और सीने में दर्द जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में भी भोजन के साथ नमक, काली मिर्च के चूर्ण तथा नींबू के रस के साथ मूली के टुकड़े खाने पर लाभ होता है।

-खाली पेट **डकारें आना** और खाना लाने के बाद खुलकर डकार न आना ऐसी शिकायत में भी भोजन के साथ कच्ची मूली का सेवन अत्यंत हितकर होता है।

-शरीर के किसी अंग में **चर्बी की गांठ** जैसी (जिसमें दर्द न होता हो) पड़ने पर उस पर मूली का रस मलना चाहिये। इस प्रयोग से धीरे-धीरे गांठ की चर्बी घुल जाती है और गांठ गायब हो जाती है। यदि दो सप्ताह तक कोई लाभ न हो तो कुशल चिकित्सक से संपर्क करें।

-बार-बार **गले में खराश**, बैठी हुई आवाज तथा मुंह से पानी छूटने की शिकायत में मूली के कस में हलदी मिलाकर खाना चाहिए।

-**भूख न लगने तथा गले और जीभ के सुन्न रहने** पर नरम मूलियों को काटकर पानी में उबाल कर सूप तैयार करें और उसमें काली मिर्च, धनिया और जीरा डालकर भोजन से पूर्व चुस्कियां लेकर पिएं, लाभ होगा।

-छोटे बच्चों को यदि **पेट में कीड़े** पड़ने की आदत-सी हो जाये और कीड़े बड़े-बड़े हों तो उन्हें मूली के चार चम्मच रस में दो चम्मच शहद मिलाकर पिलायें और दो घंटे बाद अंरेडी का तेल पिलायें। इससे सभी कीड़े निकल जायेंगे।

-**बार-बार सर्दी खांसी** होने तथा भोजन में अरुचि होने पर मूली और मूंग की दाल के सूप में काली मिर्च, सेंधा नमक, अजवाइन और शहद मिलाकर चुस्कियां लें।

-**पेशाब के कम होने**, बूंद-बूंद और वेगरहित होने की स्थिति में सवेरे खाली पेट तथा शाम को चार बजे मूली की पत्तियों का रस चौथाई कप लेना चाहिए।

-**पथरी** यदि आकार में बड़ी हो तो शल्यक्रिया आवश्यक हो जाती है। अन्यथा यदि वह छोटी हो तो नित्य आधे कप मूली की पत्तयों के रस में एक चम्मच धनिया का चूर्ण मिलाकर छह महीने तक लगातार पीने से पथरी का बनना बंद हो जाता है और वैद्य की औषधि योजना से पथरी निकल जाती है।

-**कामला (पीलिया)** एक ऐसा रोग है, जो आरंभिक अवस्था में प्रायः पहचान में नहीं आता और उपेक्षा से घातक हो सकता है। इसमें पाखाने का रंग सफेद या काला-सफेद भी हो सकता है, भूख पूर्णतया मिट जाती है और रोगी को आलस्य घेर लेता है । ऐसी स्थिति में, प्राथमिक उपचार के रूप में चार-चार घंटे के अंतर से दिन में चार बार मूली की पत्तियों के चौथाई कप रस में चौथाई चम्मच काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर लें। २४ घंटों के अंदर लक्षणों में कमी न आने पर योग्य चिकित्सक की राय लें।

-रोज रात को सोते समय मक्खन और शहद के साथ एक चम्मच मूली के बीजों का चूर्ण लेने से **शुक्रवृद्धि** होती है।

मूली निषेध :

१. मूली अमाशय में देर तक पड़ी रह जाती है, अतः इसे रात में नहीं खाना चाहिए।

२. मूली को दूध के साथ कदापि न लें।

३. कोमल नरम मूली ही खायें, जड़ीली मूली वर्जित है।

[वैद्य रमेश म. नानल, बंबई द्वारा प्रस्तुत जानकारी के आधार पर]

वैद्य जयप्रकाश अवस्थी, लखनऊ

सेब

यह एक प्रसिद्ध सुगन्धित और स्वादिष्ट फल है जो भारतवर्ष में विशेषतः कश्मीर, कुमाऊं, गढ़वाल, और पंजाब में अधिक पाया जाता है। इसको हिन्दी में सेव; संस्कृत में सिम्बितिका; गुजराती में सफरजन; मराठी में सफरचन्द और बंगला में सेब, नाम से जानते हैं। इसका लैटिन नाम "मैलस् सिल्वेस्ट्रिस" है। इसका वृक्ष ३० फीट से अधिक ऊंचा नही होता। इसके पत्ते ५ से ८ से.मी. लम्बे, गोल आकृति (अंडे के समान) के तथा फूल ३ से ६ से.मी. व्यास के व गुलाबी रंग के होते हैं इसके फल गोल, व दोनों तरफ से अन्दर धंसे हुए होते हैं। फल के दो प्रकार (ख ट्टा तथा मीठा) होते हैं। भारत में अगस्त माह के अंत से अक्तूबर आरंभ तक सेव का मौसम रहता है। सितम्बर के मध्य तक फलों के एकत्र करने का काम पूरा हो चुकता है, और फल बाजार के लिए तैयार हो जाते हैं।

लगाने की विधि

इसके छोटे–छोटे पौधों की कलम वर्षा ऋतु में कंकड़ीली, पीली मि ट्टी के खेतों में थोड़ी–थोड़ी दूरी पर लगायी जाती है। तीन–चार साल में इसके वृक्ष तैयार हो जाते हैं।

गुण व उपयोग

सेव में विटामिन ए, बी, सी और ई पायी जाती है। इसके अतिरिक्त कैल्शियम, फासफोरस, पोटैशियम, सिलिका, सोडिएम, गंधक, लोहा, मैग्निशियम, क्लोरीन, ब्रोमीन और अति सू क्ष्म मात्रा में संखिया भी पाया जाता है जो कि शरीर के लिये निरापद ही नही, आवश्यक और लाभकारी भी है।

प्राकृतिक चिकित्सा में सेव का प्रयोग अनेक रोगों के इलाज में किया जाता है। खून की कमी (एनीमिया), जोड़ों का दर्द (आथ्राईटिस), दमा, फुड़िया, कब्ज, मधुमेह, अतिसार, लिवर की शिकायतें, स्त्रियों में मासिक धर्म की गड़बड़ी, वृक्क और मूत्राशय की पथरी आदि में भी इसका प्रयोग किया जाता है। अमेरिका में कैंसर के मरीजों को सेव प्रधान आहार देने से लाभ होते देखा गया है।

एक सेव नियमित रूप से लेने से अनेक प्रकार के रोगों से हम अपने शरीर की रक्षा कर सकते हैं – यह कहावत तो सच ही है।

सेव का फल मांसल (गूदेदार) होता है अतः इसका नित्य नियमित सेवन करने से शरीर के मांसल अवयवों को, विशेष रूप से आंतों को बल मिलता है। आंतों की कमजोरी से दस्त होने, भूख की कमी होने, पेट में गैस बनने, कमजोरी के क्रमशः बढ़ने में नियमित रूप से सेव खाना चाहिये।

सेव के उत्तम गुणों के कारण लोगों का मत है कि यदि एक सेव फल का सेवन नियमित रूप से किया जाय तो मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ व निरोग बनाये रख सकता है। सेव को शक्कर के साथ कभी नहीं लेना चाहिये। इसे शहद के साथ लेना विशेष लाभकारी है। ●

सेव का जैम बनाने की विधि

सेव का जैम बनाने के लिये अच्छे अच्छे पके सेव को एकत्र कर लेते हैं। फिर उनको स्वच्छ जल से अच्छी तरह से धो लेते हैं, फलों को लेते समय यह ध्यान रखते है कि वह अधिक पका हुआ न हो। इसके बाद सेव को छील कर, उसे चार टुकड़ों में काट कर बीज निकालकर अलग कर देते है। कटे हुये सेव को एक किलोग्राम की मात्रा में, एक स्वच्छ स्टील के भगौने में लेकर उसमें ३०० मि.ली. पानी मिलाकर धीमी आँच पर चढ़ा देते है तथा लकडी की चम्मच से बड़े टुकड़े कुचलते रहते हैं। करीब आधे घंटे में सेव के टुकड़े गल कर गाढ़े गूदे का रूप ले लेते हैं। गूदे में आवश्यकतानुसार शक्कर मिलाते हैं। शक्कर की मात्रा, सेव के खट्टेपन पर निर्भर करती है। साधारणतः सेव मीठे होते हैं। अतः एक किलोग्राम सेव के गूदे में ७०० ग्राम के अनुपात से शक्कर लेना चाहिये, यदि फल खट्टे हों तो शक्कर का अनुपात बढ़ाया जा सकता है। जैम में मिठास के साथ–साथ थोड़ा सा खट्टापन भी रहना चाहिये अतः इसके लिये तीन–चार ग्राम नींबू का सत मिला देते हैं। जैम को उस अवस्था तक पकाते है जब तक वह अवलेह के समान न हो जाय। जैम को गर्म करते समय लकड़ी के चम्मच से हमेशा चलाते रहते हैं जिससे गूदा पेंदें में न लगने पाये। जैम के तैयार होने की पहचान यह है कि चम्मच से चलाने पर वह भगौने का पेंदा छोड़ने लगता है। जैम बनाने की क्रिया में सेव फल की गंध कम हो जाती है। इसलिए यदि चाहें तो बाजार में उपलब्ध सेव फल की गंध (एसैन्स) लेकर, तैयार जैम में डालकर, ठंडा कर उसको स्वच्छ शीशी में भरकर रख सकते हैं। इस प्रकार सेव की जैम तैयार हो जाती है। तैयार जैम पर एक पतली पर्त पिघले मोम की डाल देते हैं जिससे पदार्थ वायु के सम्पर्क में न रहे।

–श्रीमती अनीता मालवीय, लखनऊ

अनार (दाड़िम)

वैद्य रमाशंकर यादव,
लखनऊ

अनार भारतवर्ष का प्रसिद्ध फल है। इसका उपयोग आहार तथा औषधि दोनों रूपों में किया जाता है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का तीन से पांच मीटर ऊंचा होता है। इसकी बाहरी छाल का रंग मटमैला तथा भीतरी भाग का रंग पीला होता है। पत्ते लगभग ५ से ७.५ सेमी. लम्बे और एक से २.५ सेमी. चौड़े, दोनों ओर से बाहरी भाग पर नुकीले होते हैं। फूल का रंग लाल होता है। फल गोलाकार लगभग १० से.मी. व्यास वाला होता है। फल का भीतरी भाग झिल्लीदार पर्दों द्वारा अनेक कोष्ठों में बंटा रहता है जिनमें गुलाबी या लाल रंग के दाँत के आकार के अनेक बीज ठसाठस भरे होते हैं।

माघ तथा फाल्गुन (जनवरी से मार्च) में इसके नये पत्ते लगते हैं। इसमें फूल हर मौसम में लगते हैं किन्तु चैत-बैसाख (मार्च से मई) में बहुत लगते हैं। आषाढ़ से भादों (जुलाई से सितंबर) तक फल लगते हैं। पके हुये फलों के बीजों का ही विशेष उपयोग करते हैं।

अनार का पौधा बीज द्वारा उगाया जाता है किन्तु अधिकतर डालियों पर कलम बांधकर आषाढ़ मास में पौध तैयार की जाती है। इसकी तीन जातियाँ-१. मीठा २. खटमिट्ठा ३.खट्टा होती हैं। व्यवहार में देश भेद से अनेक जातियों का प्रचलन है।

इसकी उत्पत्ति समस्त भारत में होती है। यह अधिकतर हिमालय के तराई भागों में पाया जाता है तथा अफ्रीका, काबुल और ईरान में भी विशेष होता है। काबुल और केटा का अनार उत्तम होता है। "बेदाना" काबुली अनार की ही एक जाति है।

भाषावार नाम

हिन्दी-अनार; संस्कृत-दाड़िम, दन्तबीज, अंग्रेजी-पोमेग्रेनेट; तमिल-मादालाई चेष्टि; मराठी-डाळिंब; बंगला-दाड़िम्ब; कन्नड़-दाळिंबे, गुजराती-दाड़म; तेलुगु-दानिम्मा, फारसी-अनार, नार; अरबी-रुम्मान; लैटिन-प्युनिका ग्रैनाटम है।

गुण : अनार भूख बढ़ाने वाला, हृदय के लिये लाभकारी, दस्त एवं आंव को दूर करने वाला, पेट के कीड़े निकालने वाला, प्यास मिटाने वाला व शक्तिदायक होता है।

औषधीय उपयोग :

चरक ने अनार के रस को हृदय के लिये लाभकारी बताया है। जिन्हें हृदय से संबधित रोग हैं उन्हें इसके फल के रस का सेवन करना चाहिये। इससे हृदय को ताकत मिलती है।

--अतिसार (पतले-दस्त) व **प्रवाहिका** (आंव वाले दस्त) में अनार का छिल्का अच्छा असर करता है। इसके लिए अनार के फल का छिलका एकत्रकर सुखा लेते है फिर इसका महीन चूर्ण तैयार करके छलनी से छान लेते हैं। इस चूर्ण की दो-तीन ग्राम की मात्रा दिन में दो-तीन बार, ताजे पानी के साथ लेने पर लाभ होता है।

इन रोगों में रोगी को **कमजोरी** आ जाती है अतः इस स्थिति में पथ्य के रूप में अनार फल का सेवन करने से शरीर को शक्ति मिलती है।--आमतौर पर आपरेशन होने के बाद, बुखार में, खून की कमी में, रोग मुक्ति के पश्चात स्वास्थ्य लाभ के लिए अनार के फल का पथ्य के रूप में सेवन किया जाता है।

--अनार के जड़ की छाल का काढ़ा १० से २० मि.ली. की मात्रा में खाली पेट लेने पर, दूसरे दिन मल के साथ कीड़े बाहर निकल जाते हैं।

नजला जुकाम मीठे अनार के पत्तों को छाया में सुखा लें और खूब बारीक पीसकर मधु या गुड़ इतना मिलायें कि जिससे गोली बन सके। एक गोली मुख में रखकर दिन में तीन-चार बार चूसते हैं जिससे नजला, जुकाम तथा खाँसी में विशेष लाभ होता है।

आँख की खुजली: अनार के दानों का पानी किसी ताँबे के बर्तन में डालकर आग पर पकायें। जब पानी खूब गाढ़ा हो जाय तो इसे निकालकर जस्ते की डिबिया में सुरक्षित रख लें। रात्रि में सोते समय एक-एक सलाई आँखों में लगाना चाहिए। इससे नेत्रों की खुजली और ललाई दूर हो जाती है। इससे धुंध और जाले में भी लाभ मिलता है।

दाँतों से रक्त निकलना: अनार के सूखे फूल या फल की छाल लेकर खूब बारीक पीसकर शीशी में सुरक्षित रख लें। प्रातः काल मंजन की भाँति प्रयोग करने पर मसूढ़ों से निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है। दाँत भी सुदृढ़ हो जाते हैं।

ओंठों का श्वेत होना: खून की कमी के कारण ओंठ सफेद हो जाने पर ताजे अनार का नित्य प्रति सेवन लाभ दायक है। इससे ओठों पर लालिमा आ जाती है।

कान दर्द: अनारदाने को मधु में खूब बारीक पीसकर छान लें और आवश्यकता पड़ने पर गुनगुना करके कान में डालें। इससे कान का दर्द शान्त हो जाता है।

पेट दर्द: अनार लेकर दानों को निकाल लें तथा इन पर नमक और कालीमिर्च पीसकर मिला कर चबायें। इससे पेट दर्द दूर हो जाता है।

अनार का शर्बत: अनार के दानों को निचोड़कर एक लीटर रस निकाल लें और इसमें तीन किलो खाँड़ मिलाकर चासनी बना लें। आवश्यकतानुसार इसका शरबत बनाकर सेवन करें। ▲

औषधि निर्माण-

सितोपलादि चूर्ण

वैद्य लक्ष्मीकांत कुलकर्णी
लखनऊ

खांसी, दमा, तपेदिक जैसी फेफड़े की कफ प्रधान बीमारियों और नजला, जुकाम आदि रोगों में सितोपलादि चूर्ण अत्यंत लाभप्रद है। बरसात के बाद शरद ऋतु इसके निर्माण का उचित समय है। इस ऋतु में निर्मित इस चूर्ण का उपयोग अगली बरसात तक किया जा सकता है।

इस चूर्ण का नाम सितोपलादि, इसमें मिलाये जाने वाले प्रमुख द्रव्य सिता अर्थात मिश्री के नाम पर आधारित है। चूर्ण के घटक और उनकी मात्रा निम्न है:-

मिश्री १६ भाग
वंश लोचन ८ भाग
छोटी पिप्पली ४ भाग
इलायची २ भाग
दालचीनी १ भाग

यहां पर इसके नाम के अक्षरों में छिपे एक रहस्य को बताना प्रासंगिक होगा। इसके नाम में पांच अक्षर हैं और चूर्ण में द्रव्य भी पांच ही पड़ते हैं और उनके नाम इन्हीं पांच अक्षरों से शुरू होते हैं; "स" से सिता यानी मिश्री, "त" से तबाशीर यानी वंशलोचन, "प" से छोटी पीपल, "ल" से एला यानी बड़ी इलायची और "द" से दालचीनी।

बनाने की विधि

एक साफ इमामदस्ते में पहले छोटी पिप्पली, बड़ी इलायची तथा दालचीनी को एक साथ कूटकर महीन चूर्ण बना लेते हैं। फिर उसको महीन छानकर अलग पात्र में रख देते हैं। अब इमामदस्ते को साफ कर उसमें वंशलोचन तथा मिश्री को अलग-अलग कूटकर महीन चूर्ण बना लेते है। फिर इसमें छोटी पिप्पली , बड़ी इलायची और दालचीनी का महीन पहले तैय्यार किया गया चूर्ण डालकर सबको एक साथ मिलाकर रख लेते है। इस तरह से सितोपलादि चूर्ण तैयार हो जाता है।

औषधीय उपयोग

--बगैर बलगम की सूखी खांसी में सितोपलादि चूर्ण गाय के घी के साथ दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए।

--जिस खांसी में कफ निकलता हो उसमें सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ दिन में २-३ बार एक सप्ताह तक लेने से बीमारी दूर होती है। जिन्हें चिरकालिक दमा एवं राजय क्ष्मा की बीमारी है उन्हें यह चूर्ण अन्य औषधियों के साथ गाय के घी में मिलाकर सेवन करने से लाभ पहुंचाता है क्योंकि यह चूर्ण कफ को गीला करके निकाल देता है।

मात्रा और अनुपान

वयस्कों को ३-६ ग्राम तथा बच्चों को १/२ -२ ग्राम चूर्ण की मात्रा दिन में २-३ बार तक देनी चाहिए।

बेचारे का रोग तो ठीक हो चुका है पर अब यह आधुनिक दवाओं के सेवन के दुष्प्रभावों से पीड़ित है।

हमें एजेंट चाहिए ,

जीवनीय के हिंदी व अंग्रेजी दोनों संस्करणों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए हमे अपने पाठकों व अन्य एजेंटो की मदद चाहिए हैं। हमें आशा है कि आप हमें इसकी खुदरा बि क्री व वार्षिक चंदे इकट्ठे करने मे मदद देंगे। इस कार्य के लिए हम उपयुक्त कमीशन भी देने को तैय्यार हैं। इच्छुक व्यक्ति संबंधित शर्तों के लिए कृपया निम्न पते पर संपर्क करें।

वितरण मैनेजर, जीवनीय
सी-३/५ , रिवर बैंक कालोनी
लखनऊ - २२६०१८

रहिमन पानी राखिये

डा. रवि कुमार शर्मा, लखनऊ

पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व बहुत कुछ पानी पर निर्भर करता है। मनुष्य बिना आहार के बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है। मगर पानी के बिना दो दिन से अधिक नहीं रह सकता। पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त जीवों की संरचना का एक प्रमुख घटक पानी है। मनुष्य के शरीर में उसके वजन का लगभग ८७% पानी होता है। त्वचा के सूक्ष्म छिद्रों से निकलने वाला पसीना, जिसमें शरीर द्वारा परित्यक्त अनेक पदार्थ घुले होते हैं, पानी है। इसी प्रकार मूत्र भी, जिसमें अनेक पदार्थ घुले होते हैं, पानी है। जब पसीने और पेशाब के रूप में पानी शरीर से निकल जाता है तो हम प्यास का अनुभव करते हैं। प्यास लगने का अर्थ यह है कि शरीर को पानी की आवश्यकता है। अपने शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें प्रतिदिन मौसम और स्थान के अनुसार दो से पांच लिटर तक पानी पीना चाहिए।

आज नगरों और महानगरों के निवासियों को क्लोरीन की अत्यधिक मात्रा मिलाकर गंदे नालों और नदियों का पानी साफ करके दिया जा रहा है। विटामिन ई तथा शरीर के अनेक बहुमूल्य एंजाइमों को अधिक क्लोरीन नष्ट कर देता है। यह पानी रक्त-परिसंचरण, हृदय तथा धमनियों के लिए हानिकारक तो है ही इसमें अक्सर पाइप के अनेक रासायनिक पदार्थ भी घुल जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं नगरों में बीस-बीस रासायनिक पदार्थों से पानी का संस्कार किया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कैंसर तथा अन्य घातक बीमारियां फैलती हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि जिस पदार्थ को प्रकृति ने हमारे शरीर को स्वच्छ रखने के लिए बनाया है, वही दूषित हो उठा है।

इटली के कुछ वैज्ञानिकों की धारणा है कि सीसे के पाइपों से पानी की आपूर्ति तथा खाना पकाने के बर्तनों से जहर फैलने के कारण ही रोमवासियों के चरित्र में ह्रास हुआ, जिसके फलस्वरुप रोमन साम्राज्य का पतन हुआ। एल्युमीनियम के बर्तनों में भी पानी को कभी नहीं उबालना चाहिए, क्योंकि अब इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि यह खनिज मानव शरीर पर विषैला प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता।

पानी को प्रायः दो वर्गों में बाटा जाता है, खारा पानी और मीठा पानी। खारे पानी में सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के क्लोराइड पाये जाते हैं। यदि पानी में पांच ग्राम प्रति लिटर तक की मात्रा में लोहा तथा अन्य खनिज पदार्थ हों तो उसे पीने के लिए उपयुक्त और अच्छा माना जा सकता हैं। पानी में घुले पदार्थों की मात्रा में अंतर उस मिट्टी तथा पृथ्वी की पपड़ी की बनावट के कारण होना है, जिसमें पानी एकत्र रहता है। समुद्र का पानी, उसमें घुले क्लोराइडों, कार्बोनेटों और फास्फेटों आदि की अत्याधिक मात्रा के कारण पीने योग्य नहीं होता। कुंए और बहते झरने का पानी ताजा पानी कहलाता है। प्राचीन ग्रंथों में इसे थकान, अनिद्रा, अपच, खांसी, बेहोशी आदि को दूर करने वाला बताया गया है।

शुद्ध पानी

शुद्ध पानी स्वाद और गंध से रहित तथा पारदर्शी होता है। यदि पानी ऐसा नही हैं तो उसे पांच मिनट तक खौलाना चाहिए और फिर ढंक कर रख देना चाहिए। ठंडा हो जाने पर ऊपर का साफ पानी निथार लें। यह शुद्ध पानी है।

औषधीय प्रयोग

थकान–अत्यधिक थकान में गुनगुने पानी से नहाना तुरंत लाभदायक सिद्ध होता है। इससे त्वचा के सभी बंद छिद्र खुल जाते हैं और रक्त-परिसंचरण तथा शरीर का तापमान सामान्य हो आता है। शरीर में चुस्ती तथा फुर्ती आ जाती है। यदि इस पानी में इत्र की चंद बूंदें डाल दी जायें तो ताजगी देर तक बनी रहती है।

बुखार – तेज बुखार में डाक्टर बर्फकी पट्टी रखाते हैं लेकिन उसके न होने पर शुद्ध पानी से काम लिया जा सकता है। इसके लिए एक साफ कपड़े को शुद्ध पानी में भिगोकर निचोड़ लें जिससे पानी टपके नहीं और फिर कपड़े को फैलाकर माथे पर रखें और कांखों में भी इसी प्रकार रुई की पट्टियां रखें। पट्टियां तब तक बदलते रहें जब तक कि ताप कम न हो जाये।

-- मलेरिया और टाइफायड में शुद्ध पानी को उबाल, ठंडा करके मिट्टी के साफ घड़े में भरकर साफ-सुथरी जगह रखें और रोगी को प्यास लगने पर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें। इससे रोगी को रोग से लड़ने में मदद मिलती है। दस-दस मिनट पर शुद्ध पानी में ग्लूकोस मिला कर भी रोगी को देना चाहिए।

पेट की सफाई– प्रातः सो कर उठते ही कम से कम २५० मिली शुद्ध ताजा पानी नित्य पीना चाहिए। नियमित प्रयोग से शरीर-तंत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन का अनुभव होता है।

कब्ज – रात में दो-चार बार कम से कम १००-१०० मिली. पानी पियें। नियमित प्रयोग से पाचन तंत्र चुस्त और दुरुस्त हो जाता है। हफ्ते में एक बार ५०० मिली.

कृपया देखें पृ. ३८

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून। पानी गये न ऊबरैं मोती, मानुष, चून।।

शरद् ऋतुचर्या

वैद्य नारायण दत्त मिश्र,
लखनऊ

वर्षा ऋतु के बाद शरद् का आगमन होता है। इस ऋतु में सूर्य स्वभावतः अभी भी गर्म रहता है तथा सभी प्राणियों का शारीरिक बल मध्यम रहता है। इस काल में मुख्य रूप से पित्त प्रकुपित रहता है जिससे रक्त भी दूषित होता है तथा पित्त एवं रक्त के रोग उत्पन्न होते हैं। लगभग १६ सितम्बर से १५ नवम्बर तक अथवा आश्विन एवं कार्तिक मास का समय शरद् काल माना गया है।

पित्त प्रकोप

वर्षा ऋतु के उपरान्त बादलों के लोप होने से सूर्य की गरम किरणों के प्रभाव से शरीर में संचित पित्त शरद् ऋतु में प्रकुपित हो जाता है। रक्त भी पित्त के दोषित होने से दूषित रहता है। प्रायः इस ऋतु में बुखार, फोड़ा, कण्ठमाला आदि रक्तज व पित्तज रोगों की उत्पत्ति होती है। खुजली, चकते पड़ना आदि चर्म विकार भी उत्पन्न हो सकते है। रक्त मोक्षण(फस्द खोलना)के लिये यह काल उत्तम माना गया है। रक्त मोक्षण से शरीर में दूषित रक्त की मात्रा को कम किया जाता है जिससे नवीन रक्त का शरीर में निर्माण होता है व अनेक रोगों से छुटकारा मिलता है।

सेवनीय आहार-विहार

शरद् ऋतु में विशेष रुप से खुलकर भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये। भोजन स्वाद में मधुर, हल्का तथा तिक्तरस युक्त होना चाहिये। प्रायः ऐसा भोजन खाना चाहिये जो पित्त नाशन का कार्य करता हो। इस ऋतु में हरड़ का प्रयोग विशेष लाभप्रद होता है। हरड़ को मिश्री अथवा गुड़ व धनिये के साथ खाना चाहिये। आँवले को शक्कर के साथ लेने से भी लाभ होता है।

शरद् काल में गेहूं, ज्वार से बने पदार्थ और गाय का दूध, दही, मक्खन, घी, मलाई, श्रीखण्ड आदि द्रव्यों का सेवन करना चाहिये। सब्जियों में चौलाई, बथुआ, नारी का साग, लौकी, तरोई, फूलगोभी, मूली, पालक, सोया, आंवला का प्रयोग करना चाहिये। मूंग की दाल और सेम का सेवन हितकर है। फलों में अनार, केला, सिंघाड़ा आदि का सेवन करना लाभप्रद माना गया है। मांसाहारियों के लिए जंगली पशु-पक्षियों का मांस सेवन करना हितकर है। विशेषकर तीतर, हिरण, खरगोश, बकरा व मछली का प्रयोग करना चाहिये। मुनक्का, कमलगट्टा जैसे शीतल द्रव्य जो पित्त शमन का कार्य करतें हैं, सेवनीय हैं। इस काल में मुख्य रूप से कषाय, मधुर, नमकीन तथा ठंडी तासीर वाले द्रव्यों का सेवन लाभप्रद होता है।

प्रातः कालः प्रातः काल हल्का, मधुर रस प्रधान और शीघ्र पचने वाला नाश्ता लेना चाहिये। एक गिलास दूध अथवा दूध से बनी खीर ले सकते हैं। दलिया प्रातः काल नाश्ते में लाभप्रद रहता है। मक्खन लगी डबल रोटी ले सकते हैं।

दोपहरः दोपहर के खाने में चपाती, मूंग या मसूर की दाल, चावल, सब्जियों में लौकी, गोभी, सेम, परवल, कुन्दरु और फलों में केला और अनार का प्रयोग करना चाहिये। मांसाहारी लोग मछली , बकरा अथवा खरगोश का मांस ले सकते हैं।

सायंकालः सायंकाल की चाय के साथ कोई फल जैसे, केला, मीठा सेव, अनार आदि ले सकते हैं।

रात्रि : हल्का, सुपाच्य एवं ताजा बना भोजन ग्रहण करना चाहिये। दोपहर का रखा भोजन नहीं करना चाहिए।

असेवनीय आहार-विहार

इस ऋतु में चूंकि पित्त व रक्त दूषित रहता है अतः ऐसे खानपान जो पित्त को दूषित करते हैं, उनसे बचना चाहिए। विशेषकर गरमचरपरा व कड़ुआ खाद्य नहीं खाना चाहिए। इस ऋतु में रात्रि में ज्यादा देर तक जागरण करना और दिन में सोना हानिकारक है। अधिक परिश्रम अथवा कसरत भी नहीं करना चाहिये पर सामान्य व्यायाम चालू रखे। धूप में ज्यादा देर नहीं बैठना चाहिए और स्त्री सहवास की अति से बचना चाहिए।

शरद् ऋतु में मट्ठे का प्रयोग हानिकारक माना गया है। लहसुन, बैंगन, करेला, सौंफ, हींग, कालीमिर्च, पीपल, सरसों का तेल आदि द्रव्यों का प्रयोग ज्यादा नहीं करना चाहिए। उड़द से बने गरिष्ठ पदार्थों का सेवन न करें।खट्टे चरपरे पदार्थजैसे कढ़ी का सेवन कम करना चहिये।

इस ऋतु में उपर्युक्त आहार-विहार के नियमों का पालन करने वाला स्वस्थ और प्रसन्न रहता है।

लोक स्वास्थ्य परंपराएं

चैते चना बैसाखे बेल
जेठे शयन असाढ़े खेल
सावन हर्रे भादों तिक्त
क्वार मास गुड़ खाओ नित्त
कातिक मूली अगहन तेल
पूसे करो दूध से मेल
माघ मास घिउ खिचड़ी खाय
फागुन में नित प्रात नहाय
जो यह नियम बारह धरै
रोग दोस सब तन के हरै।।

आंख दुखना

वैद्य बाबूराम त्रिपाठी, झांसी

मानव के नेत्र जितने उपयोगी हैं उतने ही संवेदनशील भी। मनुष्य की आँखें इसी संवेदनशीलता एवं उपयोगिता के कारण दूसरी ज्ञानेन्द्रियों से श्रेष्ठ मानी गयी हैं। आँखों में कई प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं, जिनमें आँख आना भी एक है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इसे आँख उठना या आँख दुखना भी कहते हैं। अंग्रेजी में इस कजंक्टिवाइटिस और आयुर्वेद में अभिष्यंद रोग कहते हैं।

लक्षण

इस रोग के प्रारंभ में आँख में ऐसा महसूस होता है जैसे आँख में धूल का कोई कण या रेत पड़ी हो और गड़ रही हो। रोगी आँख में किरकिरी का अनुभव करता है। आँख से पानी बहता है और उसमें सुई चुभने जैसी पीड़ा होती है। बाद में आँख में लालिमा, स्राव तथा पीड़ा बढ़ती जाती है। यह लाली आँख में सूजन के कारण होती है। रोगी को प्रकाश में आँखें खुली रखने में परेशानी होती है, अतः वह अंधरे मे रहना पसंद करता है।

रोग की गंभीरता एवं तीव्रता के अनुसार आँख से बहने वाला स्राव पतला, गाढ़ा अथवा चिपचिपा हो सकता है। गाढ़े एवं चिपचिपे स्राव के कारण पलकें आपस में चिपक जाती हैं। आँखों में कीचड़ आता रहता है। गाढ़ा स्राव पलकों पर सूख कर चिपका दिखाई देता है, जिससे पलकों की बीमारी होने का भ्रम हो सकता है, परंतु आँख धोने से पलकें साफ हो जाती हैं जिससे पलकों की बीमारी का भ्रम दूर हो जाता है। आँख से बहनेवाला पानी किसी रोगी को ठंडा और किसी को गरम महसूस होता है। आँखों में खुजली भी हो सकती है।

पहले एक आँख प्रभावित होती है, फिर एक दो दिन बाद दूसरी भी प्रभावित हो जाती है।

यह बीमारी मुख्य रूप से दो कारणों से हो सकती है (१) किसी प्रकार के जीवाणु या विषाणु का उपसर्ग या संक्रमण (इन्फेक्शन) तथा (२) धूल, धूप अथवा धुआँ आदि के प्रति असात्म्य (एलर्जी)। सामान्यतया संक्रमणजन्य स्थिति अधिक मिलती है। इसके फैलने की गति इतनी तेज होती है कि कभी-कभी यह बीमारी पूरे क्षेत्र, प्रांत अथवा देश भर में फैल कर लाखों लोगों को अस्वस्थ कर देती है। आँखों में जीवाणुओं का संक्रमण कभी स्वतंत्र रुप से होता है और कभी शरीर में उपस्थित किसी अन्य संक्रमण से, जैसे चेचक (बड़ी या छोटी), कनमूर (मंप्स), टी.बी., गर्मी, सूजाक या सिफलिस आदि बीमारियों के संक्रमणों के नेत्र में पहुंच जाने के उपद्रवस्वरूप भी आँख उठ सकती है।

चेचक एवं सूजाक का आक्रमण आँखों की पुतलियों पर घाव बना सकता है, जो भर आने पर अपने पीछे सफेद धब्बे का निशान छोड़ जाता है, जिसे छींट या फूला कहते हैं। यह धब्बा यदि पुतली के बीचों बीच पड़ता है तो व्यक्ति को आँख से आंशिक रूप से दिखाई पड़ता है या बिल्कुल ही कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अतः चेचक होने पर आँखों की विशेष सुरक्षा करनी चाहिये।

--आँखों को साफ एवं ठंडे जल से दिन में बार-बार धोते रहें।

--घीकुआर का गूदा तथा फिटकरी मिलाकर स्वच्छ कपड़े में बांधकर पोटली बना लें और इसे बार-बार आँख पर फेरते रहें।

--१० मिली. गुलाबजल में ४० मिग्रा शुद्ध फिटकरी मिलाकर साफ शीशी में रख लें। दिन में तीन-चार बार दो-दो बूंद आँख में डालें। इससे लाली, आंख का बहना तथा दर्द कम होता है।

--त्रिफला जल से आंख धोना भी उपयोगी है।

--मुलेठी सत्व का ५% घोल आंख में डालने से लाली एवं पीड़ा कम होती है।

-बोरिक ऐसिड पावडर को जल में घोलकर उससे नेत्र धोना चाहिए।

-पीड़ित नेत्र पर जीरा जल का सिंचन, ठंडा किया गुलाब जल, बर्फ के टुकड़ों को कपड़े की पोटली में बांधकर शीतोपचार करे।

-रोगोत्पत्ति के चार दिन बाद गर्म जल में कपड़ा भिगोकर निचोड़ कर आँख पर

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

भला इस बुढ़ापे में क्या नक्शेबाजी करुंगा, मेरी आंखे उठ आई हैं साहब।

जुकाम या प्रतिश्याय

वैद्य पी. एस. श्रीवास्तव, हंडिया, इलाहाबाद

प्रतिश्याय या जुकाम नाक से संबंध रखने वाला रोग है लेकिन इसमें नाक के अलावा पूरे शरीर पर भी असर पड़ता है। इसी कारण इस रोग से प्रभावित रोगी की नाक से पानी आने के अलावा, अन्य लक्षण जैसे-- ज्वर, बार-बार छींक का आना, शरीर में जकड़न व दर्द आदि उत्पन्न होते हैं।

इस रोग को उत्पन्न करने वाले प्रधान कारण हैं - अत्यधिक ठंडे जल का सेवन या उससे स्नान, रात्रि में ओस में सोना, वर्षा या शरद ऋतु में दिन में अधिक सोना, रात्रि में जागना, अत्यधिक धूल व धुएं वाले वातावरण में रहना, स्थान परिवर्तन (गर्म जलवायु से ठंडी जलवायु में आ रहना) देर तक कूलर या वातानुकूलित कक्ष में रहना या सोना, अतिमैथुन आदि। इन के अलावा प्रतिश्याय रोग से या पीडित व्यक्ति के संपर्क से उसके बिस्तर पर सोने से भी प्रतिश्याय रोग हो सकता है।

कुछ विशेष लक्षणों के द्वारा शरीर में प्रतिश्याय रोग के उत्पन्न होने को पहचाना जा सकता है। जैसे - सिर में अत्यधिक भारीपन, और अंगों में पीड़ा-जकड़न और रोंगटों का खड़ा होना, छींकों का आना, नाक से पानी बहना आदि।

सामान्य लक्षणः प्रतिश्याय रोग के पूर्ण रूप से उत्पन्न हो जाने पर शरीर में ये सामान्य लक्षण दिखाई देते हैं- सिर में दर्द होना, ज्वर, छींक का आना, भूख न लगना, मुख व गले का सूखना, शरीर में भारीपन महसूस होना, किसी कार्य को न करने की इच्छा, नाक से पतला या गाढ़े द्रव का निकलना आदि।

चिकित्सा

रोकथाम की दृष्टि से रोगी को कुछ बातों का पालन करना चाहिये।

इनसे बचें

--ठंडे जल व ठंडे खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये।

--कूलर या वातानुकूलित कक्ष में अधिक देर तक नहीं रहना चाहिये।

--ओस में व दिन में नहीं सोना चाहिये।

--ठंडे पानी से नहीं नहाना चाहिये।

--रात्रि में जागरण नहीं करना चाहिये।

--धूल व धुएं में नहीं रहना चाहिये।

> महाराष्ट्र के आदिवासी सर्दी-जुकाम होने पर अजवाइन को भूनकर खाते हैं इससे लाभ मिलता है।
>
> -दलितमित्र गंगाराम जानू आवारी, नाशिक

क्या करें ?

--गुनगुने जल में थोड़ा नमक डालकर गरारा करना चाहिये।

--चाय, काफी या हल्के गुनगुने जल का सेवन करना चाहिये।

--मेथी, लौकी, पालक, टमाटर का सेवन।

--दोनों नथुनों में शुद्ध सरसों के तेल की २-२ बूंदे दिन में २-३ बार डालनी चाहिये।

घरेलू चिकित्सा

प्रतिश्याय रोग में तुलसी पत्र, अदरक, काली मिर्च, यष्टीमधु (मुलेठी), बिभीतक, हलदी, ज्वरांकुश आदि औषधियों का प्रयोग होता है।

--तुलसी के १५ पत्ते, काली मिर्च-नौ नग व थोड़ा सा अदरक, इनकी चाय बनाकर दिन में २-३ बार पीने से लाभ मिलता है। यह प्रयोग कम से कम ३ या ४ दिन तक करना चाहिये।

--५०० मिली. गाय के दूध में हलदी का चूर्ण १ ग्राम (एक चुटकी) डालकर, गर्म करके गुनगुना पीने से भी लाभ मिलता है।

हींग -१ ग्राम

सोंठ -१ ग्राम

यष्टीमधु - १ ग्राम

तीनों को बारीक पीसकर गुड़ या शहद में मिलाकर चने के बराबर गोलियां बना लें। प्रातः सायं एक-एक गोली चूसने से २-३ दिन में लाभ होता है।

--बिभीतक (बहेड़ा) का चूर्ण-३ ग्राम की मात्रा में सुबह शाम गुनगुने जल के साथ लेने पर लाभ होता है। इसका प्रयोग ४-५ दिन तक करना चाहिये।

--चाय में ज्वरांकुश के २-३ पत्ते और तुलसी के ५-१० पत्ते डालकर, पीने पर जुकाम में लाभ मिलता है।

विशेष

प्रतिश्याय रोग में शीघ्र लाभ करने वाली औषधियां नहीं लेनी चाहिये। उनसे प्रतिश्याय रोग ठीक न होकर दब जाता है जिससे काफी परेशानी हो जाती है।

बच्चों को सांस की तकलीफ की रोकथाम

डा. आर. आर. भट्ट, उडुपि

बच्चों की बीमारी और मौत का एक बड़ा कारण उनकी सांस की नली में बार-बार संक्रमण होना है, जिससे वे ठीक से सांस नहीं ले पाते। आयुर्वेद में इस बीमारी की उत्तरोत्तर अवस्थाओं को प्रतिश्याय, पीनस, कास, श्वास, ज्वर, राजयक्ष्मा उरःक्षत आदि नामों से बताया गया है और उनके लक्षण भी बताये गये हैं। ये अवस्थाएं दोषों के, विशेष रूप से कफ दोष के दूषित होने से उत्पन्न होती हैं। ऐसा मौसम के बदलने से अथवा आहार की गड़बड़ी से होता है। यदि दोषों को दूषित होने से रोका जा सके तो उक्त बीमारियां भी नहीं उत्पन्न होगी।

शरीर में दोषों का संतुलन बनाये रखने के लिये आयुर्वेद में ऋतुचर्या और दिनचर्या के अंतर्गत विस्तार से आहार-विहार के नियम बताये गये हैं, जिनके पालन से शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था उत्तम हो जाती है, और शरीर में रोग हो नहीं पाते। किंतु आज के युग में उन नियमों का यथावत् पालन बहुत कठिन है।

आयुर्वेद के ग्रंथों में शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था का गठन करने के लिए आरोग्यकर आहार-विहार के साथ ही अनेक औषधयोग भी बताये गये हैं। ये इस कार्य में अचूक सिद्ध भी हुए हैं।

वचा और पिप्पली जैसी औषधियां ग्रामीण भारत के घर-घर में परंपरागत रूप से बच्चों की देखभाल के लिए उपयोग में लायी जा रही है। ये बच्चों की रोग प्रतिरोध क्षमता का निर्माण करने में वक्त की कसौटी पर खरी भी उतरी है।

लोक स्वास्थ्य परपंराओं, आयुर्वेद के ग्रंथों तथा वैद्यकीय अनुभव के समन्वय से निम्नलिखित फार्मूला बनाया गया है, जिसे लगभग ८० मिग्रा की गोलियों के रूप में तैय्यार किया जाता है:-

त्रिफला १५ मिग्रा, मुलेठी १० मिग्रा, वच १० मिग्रा, अतिविष (अतीस) २० मिग्रा, त्रिकटु (समान मात्रा में सोंठ, पिप्पली एवं काली मिर्च) ३० ग्राम

उपर्युक्त औषधियों के सूखे चूर्ण को दूने भृंगराज (३/४ मात्रा) तथा भूम्यामलकी (१/४) के स्वरस में मिलाकर गोलियां बनाकर सुखा लें।

इस योग में अतिविष (अतीस) के अतिरिक्त अन्य सभी द्रव्य सस्ते और हर जगह मिलते हैं। अतिविष विष नहीं है और यह अति गुणकारी है। इसके अभाव में शेष औषधों से बनायी गोली से भी बच्चों को सांस के रोगों से लड़ने में समर्थ बनाया जा सकता है।

सेवन-विधि- -एक साल तक के बच्चों को आधी गोली सुबह-शाम शहद या दूध के साथ लेना चाहिये। एक से पांच साल तक के बच्चों को एक-एक गोली दोनों समय लेना चाहिये।

कसौंदी की कॉफी

प्रकृति व मनुष्य का आपसी संबंध काफी पुराना है। मनुष्य जब भी अपने को बीमारियों से ग्रस्त पाता है तो वह प्रकृति प्रदत्त वनौषधियों से अपने रोगों का इलाज करता आ रहा है। ऐसी औषधियों में एक "कसौंदी" है। इसको संस्कृत भाषा में "कासमर्द" भी कहते हैं। कासमर्द नाम से स्पष्ट है कि यह औषधि कास अर्थात खांसी का मर्दन करती है यानी उसे मिटा देती है। इसे तेलुगु में "कासिन्द" तमिल में "पेयावेरी" गुजराती में "कासोंदरी" तथा मराठी में "कासविंदा" नाम से जानते हैं। इसका अंग्रेजी नाम "नीग्रो कॉफी" तथा लैटिन नाम "कैसिया-आंक्सीडेन्टलिस" है।

इसका पौधा दो-चार फुट ऊंचा तथा कुछ दुर्गन्ध युक्त होता है। इसके पते आपस में जुड़े हुये आठ-पन्द्रह सेमी लम्बे होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। इसकी फली पांच-सात सेमी लम्बी तथा चपटी होती है। प्रत्येक फली में १०-३० की संख्या में बीज होते हैं तथा हर बीज के बीच में एक झिल्ली-सी होती है। यह पौधा वर्षा ऋतु (जुलाई-सितम्बर) में उत्पन्न होता है। शरद ऋतु (अक्टूबर-नवंबर) में इसमें फूल तथा हेमन्त ऋतु (दिसंबर-जनवरी) में फल आते हैं।

उपयोग- इसके पत्तों का लेप दाद, खुजली, फुन्सी आदि चर्मरोगों में करते हैं।

-खाँसी, सांस फूलने व हिचकी आने की तकलीफ में इसके पत्तों का स्वरस चार-पांच मिली एक चम्मच शहद के साथ देने पर लाभकारी होता है।

-कासमर्द के बीज खाँसी में लाभकारी होते हैं। खाँसी में इसका प्रयोग करने के लिये एक विशेष औषध-कल्पना तैयार करते हैं हम इस कल्पना से तैयार औषधि को "कास-कॉफी" कह सकते हैं।

कासमर्द की फलियों को तोड़कर सुखा लेते हैं फिर इन फलियों में से बीज निकालकर भून लेते हैं। इन बीजों को भूनने से इनका रंग काफी के रंग के समान हो जाता है। इन बीजों को साफ इमामदस्ते में कूटकर चूर्ण (पाउडर) बना लेते हैं, फिर इसको महीन छलनी से छान लेते हैं, इस छने चूर्ण को साफ बर्तन में रख लेते हैं। आवश्यकता पर पाउडर की दो-तीन ग्राम मात्रा लेकर उसको उबलते पानी में डालकर थोड़ी देर बाद छान लेते हैं। इस छने हुए भाग में आवश्यकतानुसार दूध व चीनी मिलाकर प्रयोग करते हैं। इस "कास-कॉफी" को दिन में २-३ बार तक ले सकते हैं। इसके लेने से खाँसी में आराम मिलता है तथा बलगम भी निकलता है। जुकाम व दमे के कारण उत्पन्न खाँसी में भी इसका प्रयोग लाभकारी होता है।

वैद्य मनमीत सिंह व वैद्य संजय शर्मा

पिप्पली

पिप्पली लता जाति की वनौषधि का फल है। इसकी बेल अन्य लताओ की भाँति अधिक विस्तार से नहीं बढ़ती किन्तु थोड़ी ही दूर फैलती है। यह इस देश के गरम प्रान्तों में पूर्व नेपाल से आसाम, खासी के पहाड़ों पर (मेघालय) बंगाल से पश्चिम की ओर बम्बई तक तथा दक्षिण की ओर ट्रावनकोर तक पायी जाती है। इसकी जड़ कुछ मोटी और खड़ी-सी होती है जिससे शाखायें निकल कर भूमि पर फैलती हैं। इसके पत्ते सात से नौ से.मी. के घेरे में, गोलाकार, पान के पत्तों के समान व कोमल होते है। इसके फल लम्बे, कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर लाल रंग के तथा सूखने पर कालापन लिये भूरे रंग के हो जाते है। इसको हिन्दी में पीपर और पीपल नाम से जानते है तथा बंगला में पीपुल या पिपुल; मराठी में पिंपली; गुजरात में पीपर, लीडी पीपल; कन्नड़ में हिप्पली; तेलुगु में पिप्पलु, पिप्पील एवं तमिल में तिप्पिली कहते हैं। इसका लैटिन नाम " पाइपर लाँगम" है।

पिप्पली दो प्रकार की होती है – छोटी और बड़ी। इनमें छोटी पिप्पली अधिक गुणकारी होती है।

गुण--पिप्पली स्वाद में चरपरी, पचने पर मधुर तथा हल्की है। यह दस्तावर, कफ को कम करने वाली, पुराने तथा प्रसूति ज्वर में लाभकारी है। इसके अलावा इसका प्रयोग वात रोगों जैसे – गठिया, कमर का दर्द, सायटिका आदि में भी किया जाता है।

पिप्पली

औषधीय उपयोग

पिप्पली एक औषध द्रव्य है। इसके फल का चिकित्सा में प्रयोग होता है, इसके चूर्ण की मात्रा २०० से ४०० मि. ग्राम तक है।

-खाँसी में छोटी पीपल का चूर्ण गाय के घी में भूनकर समान मात्रा में सेंधा नमक मिलाकर, रोज ३०० मि. ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार लेने पर लाभ मिलता है। खाँसी यदि पुरानी हो गई हो तो पीपल का चूर्ण गुड़ के साथ दिन में दो-तीन बार लेना चाहिये।

-कफज ज्वर, जिसमें ज्वर का ताप्क्रम १०१ डिगरी फा. से कम हो, आलस रहता हो, शरीर में जकड़ाहट, भारीपन व ठंड लगती हो, रोंगटे खड़े होते हों, तब पीपल का चूर्ण २०० – ३०० मि. ग्राम की

पिप्पली

मात्रा में दिन में दो बार, तुलसी व अदरक की चाय के साथ लेने पर लाभ मिलता है।

–प्रसूति ज्वर में गर्भाशय की शुद्धि के लिये पिप्पली का चूर्ण शहद के साथ एक सप्ताह तक लेने पर लाभ मिलता है।

–पिप्पली के साथ दो अन्य औषधियां सोंठ व काली मिर्च समान मात्रा में मिला देने पर जो "चूर्ण" तैयार होता है उसे आयुर्वेद में " त्रिकटु" कहा जाता है क्योंकि इसमें उपस्थित तीनों औषधियों का रस (स्वाद) कटु होता है। यह औषधि बुखार , जुकाम, खाँसी, सांस की बीमारी में, तथा पेट के रोग जैसे – भूख न लगना, अधिक गैस (वायु) का बनना आदि रोगों में लाभकारी है। घर में इस औषधि को रखना चाहिये क्योंकि बुखार, जुकाम, सांस की तकलीफ में आधुनिक औषधियां लाभ करने के बजाय नुकसानदेह होती है। बड़ों को इस चूर्ण की मात्रा ३००–६०० मि. ग्राम की मात्रा शहद या गुनगुने जल के साथ लेना चाहिये। बच्चों को इससे कुछ कम मात्रा देते हैं। त्रिकटु का काढ़ा बनाकर भी प्रयोग किया जाता है।

--आयुर्वेद में पिप्पली के एक विशेष औषधीय प्रयोग "वर्धमान पिप्पली" को जलोदर, यकृत, व प्लीहा के बढ़ने, अर्श (बवासीर) और पुरानी खाँसी, में लाभकारी बताया गया है। इसकी विधि निम्न है:–

पहले दिन दस पिप्पली से शुरू करके दस दिन तक प्रतिदिन क्रम से १० पिप्पली बढ़ाते हुये गाय के दूध के साथ पिप्पली का सेवन करते है और पुनः क्रमशः १० पिप्पली घटाते हुये सेवन करते है। अर्थात इसका प्रयोग १९ दिनों में समाप्त किया जाता है। प्रथम दिन १०, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन ३०, इस प्रकार दसवें दिन १०० पिप्पली का प्रयोग होता है। ११वें दिन पिप्पली की संख्या ९० , बारहवें दिन ८०, इस प्रकार कम करते जाते हैं। क्रम से घटाने व बढ़ाने में एक व्यक्ति कुल १००० पिप्पली का प्रयोग करता है। पिप्पली का इस तरह प्रयोग गाय के दूध में पीसकर करते है। दिन में दो या तीन बार में प्रतिदिन की पिप्पली की निश्चित संख्या का प्रयोग करते हैं। जैसे– जैसे पिप्पली की संख्या बढ़ती जाती है दूध की मात्रा भी एक नियमित क्रम से बढ़ाते हैं। जैसे प्रारम्भ में यदि दूध की मात्रा १/२ लिटर रही हो तो प्रत्येक दिन १५० मिली. बढ़ाते रहने से दसवें दिन दूध व पिप्पली की मात्रा पूरी हो जाती है। ग्यारहवें दिन से पिप्पली की मात्रा घटाते हुए दूध की मात्रा भी १५० मिली प्रतिदिन के हिसाब से कम करनी चाहिए। इस प्रकार उन्नीसवें दिन पिप्पली तथा दूध प्रारंभिक मात्रा पर आ जाता है। और इस प्रकार प्रयोग पूरा हो जाता है।

विशेषः– रोग व रोगी के बल, काल व सहन–शक्ति का विचार करके ही इसका प्रयोग किसी कुशल वैद्य की देखरेख में किया जाना चाहिये। १० पिप्पली से प्रारम्भ करना श्रेष्ठ और ६ पिप्पली से प्रारम्भ करना मध्यम प्रयोग बताया गया है और कमजोर पुरुषों के लिए ३ पिप्पली से प्रारम्भ हीन प्रयोग बताया गया है। बलवान पुरुष को पिप्पली पीसकर, मध्यमबली पुरुष को काढ़ा बनाकर पीना चाहिये तथा हीन बल वाले पुरुष को इसका चूर्ण रूप सेवन ही हितकर होता है।

वैद्य एम. एल. कपूर द्वारा प्रस्तुत जानकारी पर कु. पुष्पा अंसवाल, लखनऊ द्वारा तैयार किया गया।

गिलोय पर आधुनिक अनुसंधान

मनुष्यों में गिलोय सत्व ६५ मि. ग्राम प्रति किलोग्राम की मात्रा में मुख द्वारा देने पर निम्न निष्कर्ष पाये गये–

--**शरीर के स्थानीय घाव में** शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है जिसके कारण घाव तेजी से भरता है।

--**उदरकलाशोथ (पेरिटोनाइटिस)** के रोगियों में गिलोय देने से इस रोग के उपद्रव (व्रण संक्रमण तथा उदर का फट जाना) अनुपस्थिति पाये गये।

--इससे भूख बढ़ती है।

– गिलोय तने की मात्रा (१०० मि. ग्राम प्रति किलोग्राम) को पानी में उबालकर उसको १५ दिन तक देने पर जानवरों में निम्न असर पाए गए :–

--**ई. कोलाई** नामक जीवाणु के संक्रमण से उत्पन्न रोग पेरिटोनाइटिस में चूहे अधिक दिनों तक जीवित पाये गये क्योंकि गिलोय के कारण जीवाणुओं का हानिकारक प्रभाव जल्दी दूर हो गया।

--इस पौधे के कारण शरीर की जीवाणु व रोग नाशक क्षमता बढ़ी हुई पाई गई क्योंकि इसके प्रयोग से रक्त में उपस्थिति श्वेत कणों की संख्या भी बढ़ जाती है जिससे पता चलता है कि शरीर किसी जीवाणु के प्रभाव को दूर कर रहा है।

--गिलोय का १५ दिन तक प्रयोग करने पर यह पाया गया कि मानसिक तनाव के कारण होने वाले हानिकारक प्रभाव (आमाशय की श्लेष्मल कला की क्षति होना, सीरम कार्टिसाल की अधिक मात्रा में उपस्थिति) कम पाये गये।

--गिलोय में, ऐसपरीन औषधि के समान दर्द निवारक गुण पाये गये।

--गिलोय में, तपेदिक (टी. बी.) के जीवाणु की संख्या को कम करने वाले गुण पाये गये।

--गिलोय को सूजन कम करने, बुखार कम करने व मरोड़ वाले दर्द को दूर करने में सक्षम पाया गया।

डा. श्रीमती शरदिनी दहानुकर बंबई, द्वारा प्रस्तुत जानकारी पर आधारित

कुटकी

वैद्य कृष्ण चंद्र भूषण,
चण्डीगढ़

भारतवर्ष में कुटकी बहुचर्चित, बहुउपयोगी, तथा अतीव गुणकारी वनौषधि है। मनुष्यों के अतिरिक्त यह पशुओं के उपचार में भी प्रचुरता से प्रयोग की जाती है। पर दुःख की बात यह है कि इसमें अन्य कई द्रव्यों का मिश्रण बाजार में उपलब्ध होता है जिनमें काली या खुरासानी कुटकी (हेलिबोरस नाइजर), करु नामक (जेन्शियाना कुरोआ) तथा नकली कुटकी उल्लेखनीय है। असली या देसी कुटकी हिमालय में ऊंचाई पर पैदा होती है परन्तु वनों में अन्यत्र भी उपलब्ध होती है।

देसी कुटकी को प्रायः सफेद कुटकी भी कहा जाता है। इसके कन्द युक्त पौधे लगभग दो फीट ऊंचे होते है। पत्ते मूल के निकट से ही निकलते है तथा नीम पत्र जैसे किनारेदार होते हैं। मूल के मध्य भाग से एक कडा पुष्पदण्ड निकलता है जिसके अग्र भाग पर ७–१० से.मी. लम्बी पुष्पमंजरी होती है जिसमें नीले या श्वेत छोटे–छोटे फूल होते है। फल जौ के समान होते हैं जिसके मूल भाग पर छोटे–छोटे बीज होते हैं। इसकी जड़ १५–२५ से.मी. लम्बी अनेकों ग्रंथि युक्त होती है।

यह काश्मीर से सिक्किम तक तीन से छह हजार मीटर तक की ऊंचाई पर अप्रैल–मई में पैदा होकर जुलाई तक पूर्ण रुप से पक जाती है तथा वर्षा में प्राप्त होती है। अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में यह खूब फलती–फूलती है।

लैटिन में इसे पिक्रोराइजा कुरो; संस्कृत में कटुका, तिक्ता तथा चक्रांगी;हिन्दी में कुटकी, कडू तथा केदारी; मराठी में कुटकी, बालकडू तथा गुजराती और पंजाबी में कडू कहते हैं।

गुण

कुटकी स्वाद में तिक्त, पचने पर कटु, हल्की, ठंडी तासीर वाली, पित्त व कफ को बाहर निकालने वाली, सूजन कम करने वाली तथा दस्त लाने वाली (विरेचक) औषधि है।

उपयोग

चिकित्सा में प्रयोग के लिये कुटकी की जड़ का उपयोग ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम की मात्रा में करते हैं।

पित्तज ज्वरः इसमें तेज बुखार के साथ प्यास अधिक लगती है, मुंह का स्वाद कड़वा तथा पेशाब पीले रंग की होती है, इस अवस्था में गिलोय २ ग्राम तथा कुटकी १ ग्राम लेकर काढ़ा बनाकर दिन में दो बार प्रयोग करने से लाभ मिलता है। जिन्हें बुखार के साथ दस्त भी आते हों उनको कुटकी का सेवन नहीं करना चाहिये।

कफज ज्वर जिसमें बुखार बहुत तेज न हो (१०१° फा. से कम), आलस रहता हो, मुंह का स्वाद मीठा हो, शरीर में भारीपन व जकडाहट हो, ठंड लगती हो तथा नींद अधिक आती हो, तो ऐसी अवस्था में उसे कुटकी चूर्ण १ ग्राम , त्रिकटु (सोंठ, छोटी पीपल व काली मिर्च प्रत्येक २०० मि. ग्राम.) तथा नीम की छाल १ ग्राम लेकर काढ़ा बनाकर मिश्री के साथ दिन में दो या तीन बार, तीन चार दिन तक पीने पर लाभ मिलता है।

जलोदर (पेट में पानी उतर आना): इसमें कुटकी चूर्ण की ५००–१००० मि.ग्राम की मात्रा सादे पानी के साथ लेकर या उसका काढ़ा बनाकर दिन में तीन–चार बार पीने से दस्त व पेशाब के साथ पानी

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

लताकरंज

लताकरंज या करंजवा-यह एक घनी व कांटेदार लता है जो भारत के सभी प्रदेशों में २५०० फीट की ऊंचाई तक पायी जाती है। यह बंगाल तथा दक्षिण में बहुत होती, इसकी शाखाओं पर सीधे, कड़े व पीले रंग के कांटे लगे होते है। इसके पत्ते चौड़े, रोम वाले, तथा एक सींक पर ६-९ जोड़े में लगे होते हैं। इसके फूल हल्के पीले रंग के तथा लंबी मंजरियों में निकलते है। इसकी फलियां ६-१० सेमी. लंबी करीब ५-७ सेमी. चौड़ी, आयताकार तथा ऊपर से छोटे, नुकीले , मजबूत कांटों से ढंकी रहती हे। प्रत्येक फली में १ से २ सेमी. व्यास के दाने होते है ये हरियाली लिये हुये गहरे भूरे रंग के तथा कड़े होते है। चिकित्सा में प्रयोगार्थ बीज के अन्दर का पीला, कड़ुआ गूदा, पत्ते व जड़ काम में लाये जाते है। बीज का गूदा बीजों को सेंक कर या फोड़कर निकाला जाता है।

भाषावार नाम

इसको हिन्दी भाषा में करंज, कटकरंज, करंजवा; संस्कृत में लताकरंज; बंगाली में कांटा करंजा; मराठी में सागर गोटा; गुजराती में काकं कांचका; तेलुगु में गच्चकाय, तामिल में कझ-शिक्के नाम से जानते है। इसका लैटिन नाम सिसलपिनिया बॉण्डयुसेल्ला" है।

औषधीय गुणः इसके बीजों की मज्जा (बीज का भीतरी भाग) गर्म तासीर वाली, शरीर को बल प्रदान करने वाली, पेट के दर्द मे लाभकारी तथा पेट के कीड़ों को मारने वाली होती है। इसके अलावा बार-बार चढ़ने वाले व साधारण बुखार, मलेरिया तथा प्रसूता स्त्रियों में होने वाले बुखार में लाभकारी है।

उपयोग

साधारण तथा बार-बार चढ़ने वाले बुखार में इसके बीज का गूदा ५००-१००० मि. ग्राम की मात्रा में गुनगुने जल के साथ दिन में दो बार, तीन-चार दिन तक लेने पर लाभ मिलता है। मलेरिया के बुखार में यह क्विनीन के समान लाभ करती है। यदि बुखार आने की आशंका हो तो इसको काली मिर्च की २५० मि.ग्राम. की मात्रा के साथ लेने पर बुखार नही चढ़ता है। यह ध्यान रहे कि इसको कभी खाली पेट नही लेना चाहिये।

--प्रसूता स्त्रियों को अक्सर बुखार, पेट दर्द, कमजोरी की शिकायत होती है। इन

अपने आंगन में

शरद ऋतु मे उपयोगी घरेलू औषधीय पौधे

अधिकतर छोटी वनस्पतियां सिर्फ ऋतु विशेष में ही उत्पन्न होती है। परन्तु इनका उपयोग आवश्यकतानुसार साल भर होता रहता है। इनमें से बहुत सी वनस्पतियों के नाम व रूप को सभी अच्छी तरह जानते हैं परंतु उनके औषधि गुणों से बहुत कम लोग परिचित है। इस स्तंभ के माध्यम से हमारा प्रयास है कि आम जनता को इन वनस्पतियों के बारे में जानकारी दें जिससे सभी लोग पर्याप्त लाभ उठा सकें । इस बार हम मैथी, सौंफ , धनिया, लहसुन, पालक व घी-कुंवार इन ६ वनस्पतियों के बारे में कुछ जानकारी दे रहे हैं। आशा है कि पाठकगण इनको अपने घर-आंगन अथवा आस पास की जमीन में लगाकर लाभ उठायेंगे ।

धनिया-- यह एक सुगंधित वनस्पति है जिसके हरे पत्तों का उपयोग भोजन में सलाद, सब्जी व चटनी आदि में डालकर करते है। इसके बीजों का प्रयोग भी मसाले के लिये किया जाता है। धनिया के पत्तों तथा बीज के अलग-अलग औषधीय गुण होते हैं।

धनिया के ताजे हरे पत्ते रुचिकर, भूख बढ़ाने वाले तथा भोजन को पचाने में सहायक होते हैं।इसकी तासीर ठंडी होने के कारण इससे प्यास कम लगती है तथा यह शरीर को ठंडा भी बनाये रखती है। इसी कारण इसके पत्तों को पीसकर पतला लेप सूजन व फोड़े फुन्सियों के ऊपर भी लगाते हैं जिससे जलन कम होती है।

प्रयोग--दस्त रोकने के लिये भी धनियां के बीजों का प्रयोग करते हैं। इसके लिये बीजों को भूनकर , पानी के साथ पीसकर छान लेते है फिर इस छने हुये पानी को दस्त रोकने वाली दवा के साथ पिलाते हैं इसके अलावा धनिया के बीज भूख बढ़ाने वाले तथा गैस वायु को दूर करने वाले होते हैं। ये पचने में हल्के तथा हृदय के लिये लाभकर होते हैं बुखार होने पर धनिया के बीजों का फांट चाय बनाकर उसे दिन में २-३ बार पीने से लाभ होता है।(ग्रीष्म अंक में फांट बनाने की विधि देखें)

भाषावार नाम-- इसको हिन्दी में धनिया, संस्कृत में धान्यक,कन्नड़ में कोतांबरि, मराठी भाषा में धणे, बंगला में धने, गुजराती में धाणा या कोथमीर नाम से जानते हैं।इसका लैटिन नाम "कोरिआंड्रम सेटाइवम" है।

लगाने की विधि- समस्त भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है। जाड़े के शुरू अक्तूबर में ही इसकी अधिकांश प्रजातियों को बोया जाता है। धनिया के बीजों को पहले हथेली पर मसलकर दो भागों में तोड़ लेते है, फिर इन बीजों को तैयार क्यारी में छिड़क देते हैं।इसके बाद क्यारी में थोड़ा पानी लगाते रहते है। १० से २० दिन के अंदर बीज अंकुरित हो जाते है। समय-समय पर धनिये के खेत में से खरपतवार निकालते रहें और आवश्यकतानुसार क्यारी में सिंचाई करें। जब कुछ पत्तियां निकल आयें तो उन्हें तोड़कर प्रयोग किया जा सकता है। तीन माह बाद पौधे में फूल व बीज निकल आते हैं।

पोधों को उखाड़कर सुखा लेते है और पूरी तरह सूखने पर थैलियों में भरकर उनका प्रयोग करते हैं।

लहसुनः लहसुन के बारे में एक विस्तृत लेख जीवनीय के वर्षा अंक में छप चुका है।

औषधि रूप में लहसुन कमर दर्द, गठिया आमवात, सियाटिका आदि वात रोगों में गैस दूर करने के लिये तथा रक्त चाप को नियंत्रित करने के लिये प्रयोग किया जाता हे। नवीन अनुसंधान से पता चला है कि लहसुन रक्त में बढ़े हुये कोलेस्टेराल को कम करता है। लहसुन की तासीर गरम होने के कारण इसे गर्मी के मौसम में, गर्भवती स्त्रियों को तथा गर्म मिजाज वाले व्यक्तियों को प्रयोग नही करना चाहिये।

लगाने की विधि

इसकी खेती जाड़ों के आरम्भ में सितम्बर-अक्तूबर में की जाती है। पहाड़ों पर फरवरी से लेकर मार्च तक इसकी खेती की जाती है। लहसुन की जवा या फांके लेकर ३०-४५ से.मी. की दूरी पर, जमीन में गाड़ देते हैं। दो से तीन सप्ताह में अंकुर निकल आता है। आवश्यकतानुसार बीच-बीच में पानी लगाते रहते है। करीब ४ माह के बाद लहसुन की पतियाँ सूखने लगती हैं तो पूरे पौधे को उखाड़कर उसमें से लहसुन की गांठ (बल्ब)तोड़कर रख लेते हैं।

मेथी

जाड़ों में इसके हरे पत्तों को सब्जी बनाने में तथा इसके बीजों को मसाले के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसकी पत्ती ठंडी तासीर वाली, पित्तशामक, भोजन को पचाने में सहायक, पेट की गैस दूर करने वाली होती है। सूजन व दाह में इसकी पत्ती का लेप बनाकर लगाते हैं। मेथी के बीज पौष्टिक , सूजन कम करने वाले तथा गर्भाशय के लिये हितकर होते हैं। प्रसूता स्त्रियों को मेथी के बीज के साथ अन्य द्रव्य मिलाकर लड्डू बनाकर खिलाने पर, उनका मासिक साफ

हो जाता है तथा भूख भी बढ़ती है।

भाषावार नामः इसको हिन्दी भाषा में मेथी, कन्नड़ में मेंथे, पंजाबी में मेथरी, तेलुगु में मेंति तथा तमिल में वेदयम् नाम से जानते हैं। इसका लैटिन नाम "ट्रिगोनेला फेनुग्रीकम" है।

लगाने की विधि

यह सभी प्रकार की मिट्टी में पैदा हो सकती है परंतु चिकनी या दोमट मिट्टी में इसकी खेती अधिक होती है।मेथी के बीज अक्तूबर से नवम्बर माह के अंत तक बोये जाते हैं। बीज का छिड़काव क्यारियों में करके सिंचाई कर दी जाती है।इस विधि से जो पौधे उगते है वे काफी घने होते हैं। इस विधि का प्रयोग सिर्फ मेथी साग के लिये किया जाता है। यदि पौधे के साथ मेथी के बीजों को भी प्राप्त करना है तब इसके लिये तैयार क्यारियों में २०–३० से.मी. की दूरी पर बीज लगाये जाते हैं। बुवाई के एक सप्ताह बाद पानी लगाया जाता है फिर प्रत्येक ८–१० दिन पर सिंचाई करते हैं। समय समय पर क्यारियों में से खर पतवार निकाल देना चाहिये। चार माह के पश्चात मेथी के फूलों में बीज निकल आते हैं। तब पूरा पौधा उखाड़कर सुखा लेते है फिर हाथों से झटककर बीज अलग कर, सुखाकर थैलियों में भरकर रख लेते है। ये बीज पकने पर भूरे रंग के पीलापन लिये हुये ३ मि.मी. लम्बे, थोड़े से चपटे होते हैं।

सौंफ– इसका पौधा १.५ से २ मीटर तक ऊंचा होता है। इसके फूल छाताकार व हल्के पीले रंग के तथा फल ६ से ७ मि.मि. लम्बे, ४ मि.मि चौड़े व डंठल युक्त होते हैं। नये बीज हरे रंग के और पुराने होने पर हल्के पीले रंग के तथा कुछ सुगंधित होते हैं।

इसके बीजों का उपयोग मसाले के रूप में होता है। बीजों को पीसकर ताजे जल के साथ लेने पर पेशाब की जलन दूर होकर पेशाब साफ होती है। बीज दस्तावर होने के कारण पेट की मरोड़ को दूर करते है। भोजन उपरान्त मुख शुद्धि के लिये भी इसे चबाते हैं।

भाषावार नाम–– इसे हिन्दी भाषा मे सौंफ, बंगाली में मौरी, गुजराती मे वरीआली, तेलुगु में सोपु, पेद्धजिलकुर्रा, तामिल में सोहकिरे नाम से जानते हैं। इसका लेटिन नाम फिनिक्युलम् वलगेरि है।

लगाने की विधि–भारतवर्ष के सभी राज्यों में इसकी खेती की जाती है, वैसे तो यह सभी प्रकार की मिट्टी में उगती है परन्तु काली रेतीली मिट्टी जिसमें चूने की मात्रा अधिक हो सौंफ की उपज के लिये लाभकर है। अक्तूबर–नवंबर माह में, पहले से तैयार क्यारियों में इसके बीजों का छिड़काव करते हैं और फिर हल्का पानी लगा देते है। जब पौधे ५–८ से.मी. ऊंचे हो जाए तो बीच–बीच से कुछ पौधे उखाड़कर फसल हल्की कर लें जिससे पौधे ज्यादा घने न हो। सप्ताह में एक बार क्यारी में से घास आदि निकालते रहते है। फरवरी–मार्च माह मे जब फल पूरी तरह पके न हों, उस समय पौधे को बीच से काटकर ऊपर वाला भाग जमीन पर फैलाकर धूप में सुखा लेते है। दो–तीन दिन के बाद पौधे को झाड़कर बीजों को अलग कर साफ पात्र में रख लेते हैं।

पालक–यह हरे पत्तों वाला एक प्रसिद्ध साग है इसके पत्ते मोटे, हरे व कुछ तिकोनाकार होते हैं। हरे पत्ते का साग कब्ज को दूर करता है। इसके पत्तों में विटामिन–बी, पाया जाता है जो रक्त में उपस्थित लाल कणों की उत्पत्ति के लिये आवश्यक होती है, अतः जिनको खून की कमी एनीमिया की शिकायत रहती है उन्हें पालक का सेवन करना चाहिये।

भाषावार नाम–– इसको हिन्दी मे पालक शाक, बंगला में पालंग शाक, मराठी में पालख, गुजराती मे पालखनी भाजी तेलुगु में मटटरवच्चलि तथा तमिल में वसैइलक्किरै नाम से लोग जानते है। इसका लैटिन नाम "स्पाइनेसिया ओलेरेसिया" है।

लगाने की विधिः पालक को अक्तूबर–नवंबर के मध्य में बोते है। पहले से तैयार क्यारी में पालक के बीजों को छिड़ककर बोया जाता है चार से पाँच सप्ताह के बाद पालक की बड़ी–बड़ी पत्तियां, जमीन से ३ सेमी. ऊपर, इस प्रकार तोड़ते हैं कि पौधा नष्ट न हो। दो सप्ताह के अंतर पर पत्तियां तोड़ी जाती हैं।पालक की क्यारी मे नमी बनायेरखने के लिये एक सप्ताह के अंतर से पानी की सिंचाई करते रहते हैं। दो–तीन माह के बाद जब पौधा पुराना हो जाता है तो पत्तियों के बीच में से पुष्प दण्डिका निकलती है जिसमें ऊपर फल व बीज बनते है।

घृत–कुमारी–इस पौधे के गुणों, उपयोग व अन्य जानकारी पृष्ठ ११ पर लेख में विस्तार से दी है।

लगाने की विधि– इसको लगाने के लिये तैयार क्यारियों में मेड़ बनाकर, या गमलों में मिट्टी भरकर इसके पौधे में से एक पत्ते को नीचे की जड़ के हिस्से सहित तोड़कर लगाया जाता है जिससे धीरे–धीरे नया पौधा बनकर तैयार हो जाता है। जिस क्यारी में इसे लगाया जाता है उसमें पानी के निकलने के लिए नालियां बना देते है जिससे क्यारियों में पानी न रुक सके, क्योंकि अधिक पानी के कारण इसके पत्ते सड़ जाते हैं।

औषधीय प्रयोग - चिकित्सा के लिये इसके पत्तों का रस व एलुवा का प्रयोग होता है। एलुवा बनाने की विधि यह है कि घी–कुआर पत्ते के काटने पर जो गाढ़ा रस निकलता है उसे किसी पात्र में एकत्र करके, तेज धूप के द्वारा या हल्की आँच पर गरम कर लेते हैं जिससे वह ठोस तथा काले रंग का हो जाता है। यही एलुवा है।

डा. आनन्द प्रकाश व रोमलो मालवीय, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत जानकारी पर आधारित।

प्राथमिक स्वास्थ्य उपचार हेतु पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों की छात्रवृत्तियां

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के पूर्व स्नातकों के लिए

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति भारतीय चिकित्सा पद्धतियों–आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध के मान्यता प्राप्त महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों (जीव–विज्ञानादि विषयों में) के उन छात्रों के लिए कुछ छात्रवृत्तियां प्रस्तुत करती है, जिन्होंने चिकित्सा–पाठ्य क्रम के अधिक दो वर्षों का अध्ययन अच्छे अंकों से पास कर लिया हो। जीव–विज्ञानादि विषयों के वे छात्र जो बी.एस–सी. उत्तीर्ण कर और एम.एस–सी. में प्रवेश ले चुके हैं, इन छात्रवृत्तियों के लिए अभ्यर्थी हो सकते हैं।

पूर्व–स्नातक छात्रवृत्ति तृतीय वर्ष से अवधि पूर्ण होने तक रु. ३०० /– प्रति माह की दर से दी जायेगी।

इन छात्रवृत्तियों के लिए चुने गये छात्रों को अपनी छुट्टियां ग्रामीण क्षेत्रों में बितानी होंगी, जहां उन्हें भा.चि.प.तथा प्राथमिक स्वास्थ्य उपचार से संबद्ध अनुसंधान की छोटी–२ योजनाओं पर कार्य करना होगा।

स्नातकोपाधि पूर्ण होने पर उन्हें तीन वर्ष तक ग्रामीण क्षेत्र में लोस्वापसंस द्वारा चुने गये संगठन में कार्य करना होगा। इस अवधि में उन्हें न्यूनतम रु.१२००।– प्रतिमास छात्रवृत्ति प्रदान की जायेगी।

भा.चि.प. के स्नातकों के लिए

भा.चि.प. आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध के सद्यः स्नातकों के लिए और विशेष परिस्थितियों में जीव–विज्ञानों में स्नातकोत्तर उपाधिधारियों के लिए प्रति वर्ष पांच छात्रवृत्तियां लोस्वापसंस प्रदान करती है। चुने गये छात्रों को किसी गुरू अनुभवी चिकित्सक/ विशेषज्ञ के आधीन प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा जिसके लिए उन्हें रु.१२००/– प्रतिमास छात्रवृत्ति प्रदान की जायगी। एक वर्ष का प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उन्हें पूरे तीन वर्षों तक का समय ग्रामीण क्षेत्र में लोस्वापंसस के किसी क्षेत्रीय दल के साथ बिताना होगा। इस अवधि में वे स्थानीय स्वास्थ्य आवश्यकताओं में अपना योगदान करेंगे। इस अवधि में उन्हें लोस्वापसंस की छात्रवृत्ति मिलती रहेगी।

आवेदन विधि

आवेदन में नाम, उम्र, पत्र व्यवहार का पूरा पता, पिता का नाम, छात्रवृत्ति के लिए आवेदन करने का कारण, अंक पत्रों की प्रतियां तथा चिकित्सा अथवा जीव–विज्ञान क्षेत्र के दो मध्यस्थों के नाम व पते देने होंगे। आवेदन के साथ अपना पता लिखा हुआ स्टैंपयुक्त लिफाफा भी भेजना होगा।

आवेदन भेजने का पता

छात्रवृत्ति के लिए आवेदन निम्न पते पर दिनांक ३ नवम्बर ८९ तक पहुंचने चाहिए:–

सचिव,
लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्द्धन समिति
पो.बा.नं. ७१०२
आर्य वैद्य चिकित्सालय
कोयम्बटूर–६४१०४५

३१ पृष्ठ का शेष

कुटकी

निकल जाता है। इसका प्रयोग करने से यदि एक सप्ताह में लाभ न मिले तो कुशल चिकित्सक से संपर्क करें।

––**खून की कमी तथा पीलिया** में कुटकी चूर्ण ५०० मि. ग्राम तथा शुद्ध गेरू भस्म १२५ मि.ग्रा. शहद के साथ, दिन में दो बार, ६–७ दिन तक लेने पर लाभ मिलता है।

––जिनको **कब्ज** की शिकायत रहती है उनको कुटकी चूर्ण ५०० मि. ग्राम, की मात्रा लेकर उसमें आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर गुनगुने पानी के साथ रात्रि में सोते समय लेना चाहिये।

––जिनको भूख न लगती हो, उनको कुटकी चूर्ण ५०० मि. ग्राम, सोंठ २०० मि.ग्राम व सौंफ ५०० मि.ग्राम मिलाकर लेना चाहिये। साधारण पेट के दर्द में कुटकी चूर्ण ५०० मि.ग्राम व काली मिर्च २०० मि.ग्राम दोनों को मिलाकर लेने पर दर्द कम होता है।

––सारे **शरीर में सूजन** होने पर कुटकी चूर्ण की ५०० मि.ग्राम मात्रा दिन में दो–तीन बार लेना चाहिये तथा हल्का व सुपाच्य भोजन करना चाहिये।

––कुटकी के छोटे–छोटे टुकड़े कर कड़ाही में डालकर सेंक लें, फिर उनको ठण्डा होने पर कूट, छान कर रख लें। यह चूर्ण बच्चों को २००–४०० मि.ग्राम की मात्रा में तथा वयस्कों को २–४ ग्राम गुनगुने जल से देने पर यकृत व उदर विकार के कारण जब मुख में छाले पड़ जाते हैं तो ऐसी अवस्था में इसे दिन में तीन–चार बार देने या उसके काढ़े से कुल्ला करने से लाभ होगा।

विशेष– –कुटकी पर हुए अनुसंधान द्वारा पता चला है कि यह यकृत में विकृति के कारण उत्पन्न रोगों पर काफी लाभ करती है तथा इसके प्रयोग करने से शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी उत्पन्न होती है।

तदैव युक्तं भैषज्यं
यदारोग्याय कल्पते
–च. सू.– १।१३५

अर्थात्
वही औषधि श्रेष्ठ है जिसका प्रयोग करने से आरोग्य की प्राप्ति होती है।

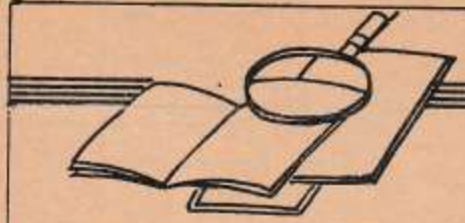

अन्य पत्रिकाओं के झरोखों से

सिद्ध चिकित्सा से गर्भ निरोधक– लालफीताशाही का शिकार

जनसत्ता २० सितंबर (वार्ता) सिद्ध चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के निदेशक डा. मंडायम कुमार के अनुसार एक ऐसा गर्भ निरोधक कैप्स्यूल तैयार किया गया है जिसके मात्र १५ कैपस्यूल खाने से महिलाएं दो साल तक गर्भधारण से बच सकती है।

मात्र दो रुपये के पूरे कोर्स वाले यह कैपस्यूल लालफीताशाही के कारण बाजार में नहीं आ पा रहे हैं क्योंकि १९८७ में मद्रास के केंद्रीय सिद्ध और आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान को भेजे गए कैप्स्यूल के नमूनों पर जांच के लिए प्रधानमंत्री द्वारा घोषित मात्र १०,००० रुपए अभी तक नहीं पहुंच सके।

कच्चा केला खाएं और अल्सर से बचें

नवभारत टाइम्स–५ अप्रैल (वार्ता) वैज्ञानिकों के अनुसार कच्चे केले के गूदे में मौजूद तत्वों के सेवन से आमाशय में होने वाले अल्सर से बचा जा सकता है तथा पाचन संबंधी गड़बड़ियां भी ठीक हो जाती हैं। भारत की देशी चिकित्सा पद्धतियों में परंपरागत रूप से कच्चे केले का प्रयोग पाचन संबंधी तथा अन्य विकारों के उपचार के लिए किया जाता रहा है। वैज्ञानिकों ने दो ऐसी दवाएं तैयार की हैं जिनके तत्व केले में मिलने वाले तत्वों जैसे ही हैं।

औषधि निर्माताओं की नजर विश्व की वनौषधियों से मुनाफे पर

" थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क" के एक स्तंभकार च क्रवर्ती राघवन के अनुसार "रूरल एडवांसमेन्ट फन्ड इंटरनेशनल (राफी)" के अध्ययन से पता चला है कि विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां मुनाफे के लिए तीसरी दुनिया के देशों में पाई जाने वाली वनौषधियों के अंधाधुंध दोहन से वहां उपलब्ध "जैवतकनीकी" (बायोटेक्नालाजी) के प्रयोग से जैवतक्नीकी और अन्य दवा कंपनियां तीसरी दुनियां के देशों की वनौषधियों एवं अन्य सूक्ष्मजीवों को महज कच्चे माल के रुप में प्रयोग करना चाहती है। "राफी" का अनुमान है कि सन २००० तक विश्व का औषधि उद्योग दक्षिण के इन देशों के लगभग ४७० करोड़ से ४७०० करोड़ अमेरीकी डालर के मूल्य की अनुवांशिक संपदा उपयोग में ला रहा है।

विशेषज्ञों द्वारा उचित सहायता की अपील

लखनऊ--२९ अगस्त (यून्यू) आयुर्वेद और सिद्ध के विकास की रणनीति विषय पर दो–दिवसीय संगोष्ठी का समायोजन केंद्री

आयुर्वेद और सिद्ध चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने किय था। इस संगोष्ठी में भाग लेने वाले विशेषज्ञों की राय में हमारी शिक्ष प्रणाली में शुरू की कक्षाओं से ही बच्चों में हमारी चिकित्सा पद्धतियों की उपयोगिता के प्रति जागरूकता पैदा करनी चाहिए उन्हें आस–पास मिलने वाली वनौषधियों के बारे में लाभकार जानकारी देनी चाहिए। सम्मेलन में भाग लेनेवालों का सुझाव थ कि सरकार को इन पद्धतियों के विकास के लिए "समुचित ध और ध्यान" दोनों ही देने की आवश्यकता है। विशेषज्ञों के अनुस इन पद्धतियों से मिलने वाले संभावित लाभ के लिए केंद्र व प्रदेश की सरकारों में आपसी समन्वय की और अधिक आवश्यकता है।

जम्मू–कश्मीर में देसी चिकित्सा को विशेष प्रोत्साहन

जम्मू–दि ट्रिब्यून (१८ सितंबर–प्रेटू) जम्मू – कश्मीर के स्वास्थ्य मंत्री मिर्जा अब्दुल रशीद के अनुसार राज्य सरकार ने देसी चिकित्सा पद्धतियों के विकास के लिए दी जाने वाली अनुदान राशि ४५ लाख रुपए से बढ़ा कर ८ करोड़ कर दी है। एक संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए मंत्री महोदय ने कहा कि ये चिकित्सा पद्धतियां न केवल प्राथमिक स्वास्थ्य के लिए ही उपयोगी है वरन ये कई असाध्य बीमारियों के उपचार में भी लाभकारी सिद्ध हुई हैं। मंत्री महोदय ने आश्वासन दिया-राज्य सरकार प्रदेश में आयुर्वेद और यूनानी के विकास के लिए सभी संभव प्रयास करेगी।

एम. जी. आर. विश्वविद्यालय में पारंपरिक चिकित्सा विज्ञान पर शोध

दि हिंदू–२७ अगस्त (मद्रास) डा. एम. जी. आर. चिकित्सा विश्वविद्यालय में ४०० करोड़ रुपये की लागत से १२ शोध केंद्र आठवीं प्रंचवर्षीय योजना के दौरान खोले जाएंगे। चिकित्सा और स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं पर खोले जाने वाले इन केंद्रों में अन्य विषयों के अतिरिक्त एक शोध केंद्र पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों के विकास के लिए भी होगा। इस कार्यक्रम के लिए जगह ढूंढ ली गई है व आवश्यक धन का प्रबंध भी कर लिया गया है।

मधुसंचय

मलेरिया की विभीषिका

संसार में प्रति वर्ष लगभग १८ करोड़ व्यक्ति मलेरिया के शिकार होते हैं जिनमें से १० लाख व्यक्ति जीवन से हाथ धो बैठते हैं। इसके ८० प्रतिशत रोगी अफ्रीका में पाये जाते हैं।

बीसवीं सदी के छठे दशक में लैटिन अमेरिका के कुछ भागों में कुनैन जैसी मलेरियानाशक दवाओं का प्रतिरोध करने में मलेरिया के पराश्रयी जीवाणु समर्थ पाये गये थे जो अब तक उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में हर जगह फैल चुके हैं।

क्लोरोक्विन मलेरिया की अब तक की सबसे सशक्त दवा है। मलेरिया के पराश्रयी जीवाणु जिस तरह दिन-ब-दिन क्लोरोक्विन का प्रतिरोध करने में प्रबल हो रहे हैं उससे स्वास्थ्य विभाग की नींद हराम हो रही है। इस कारण आजकल क्लोरोक्विन की मात्रा शरीर के प्रति किलो भार पर २५ मिग्रा के हिसाब से दी जाती है जबकि १५ साल पहले ५ मिग्रा प्रति किलो शरीर-भार के हिसाब से दी जाती थी। इन्हीं कारणों से इधर विश्व भर में मलेरिया के उपचार की नई दवाओं की खोज पर बहुत जोरशोर से काम हो रहा है।

– "थर्ड वर्ल्ड नेटवर्क फीचर्स" में श्री दिनगान मपोन्दाह, ज़िंबाब्वे।

दूध के औषधीय प्रयोग

– पेट तथा गले की जलन में दूध में मिश्री मिलाकर पियें, तत्काल लाभ होगा।

– पेट साफ न होता हो और चेहरे पर मुहांसे उठे हों तो रात में एक गिलास गुनगुने दूध में दो चम्मच एरंड तेल मिलाकर पीने से लाभ होता है।

– थकान और चक्कर आने पर एक गिलास गर्म दूध में एक चम्मच घी और एक चम्मच मिश्री चूर्ण मिलाकर पीने से लाभ होता है।

– आंखों में जलन होने पर दूध में समप्रमाण गुलाब जल मिलाकर ४-५ बूंद आंखों में डालें।

१० सितम्बर१९८९ के धर्मयुग में वैद्य तेजस क· भाऊ

ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा का नया आयाम: अंतर भारती आश्रम

नागपुर शहर के बाहर ढाबा गांव में पांच एकड़ भूमि में एक मणीक आश्रम फैला हुआ है। इसका नाम अंतर भारती आश्रम है, जो एक ओर पहाडियों से और दूसरी ओर घने जंगलों से घिरा हुआ है। आश्रम के प्रवेश द्वार पर यह प्रतीक-वाक्य अंकित है- "जिसका नहीं कोई, उसके हम हैं भाई"।

शहरों में चिकित्सा की ऊंची-से-ऊंची होती जा रही कीमतों से त्रस्त मानव को यहां आकर राहत मिलती है। यहां का प्राकृतिक परिवेश शरीर और मन पर मरहम का काम करता है। सरकारी अस्पतालों में व्याप्त दुर्गंध तथा अन्य अप्रिय दृश्यों के अभ्यस्त लोगों को यहां आकर सुखद आश्चर्य का अनुभव होता है।

आश्रम की स्थापना १९६२ ई. में डा. झिटे ने अपने अकेले दम पर की थी। आश्रम का अपना एक होमियोपैथिक कालेज भी है, जहां से प्रति वर्ष बड़ी संख्या में प्रशिक्षित डाक्टर निकलते हैं, जिनमें से अधिकांश अपने-अपने गांवों में सेवा-कार्य करने लगते हैं।

यहां दूर-दूर से सामान्य चर्मरोग के मरीजों से लेकर कैंसर जैसे भयंकर रोगों से पीडित व्यक्ति इलाज के लिए आते है। यहां उनमें रोग से संघर्ष करते हुए सामान्य जीवन जीने के लिए आत्मविश्वास भी जगाया जाता है। यहां अधिकांश रोगियों का इलाज होमियोपैथी या नैचुरोपैथी से किया जाता हैं।

– १७ सितंबर १९८९ के स्टेट्समैन में मोईन काज़ी

आहार: आत्मोकर्ष का साधन

मानवीय काया के लिए मानक स्तर के भोजन की बात सिद्धांत रूप में भी नहीं मानी गयी है क्योंकि हर काया की अपनी विशिष्ट प्रकृति है और आहार की आवश्यकता उसी के अनुरूप होती है। मोटर साइकिलों और गाड़ियों की तरह एक लीटर में इतने किलोमीटर का कोई विज्ञापनी नारा शरीर के संबंध नहीं उछाला जा सकता। आहार के संबंध में मानक तो दूर, औसत भी तय नहीं किया जा सकता।

आहार को शरीर का ईंधन और शरीर को यंत्र माननेवालों ने शरीर के संबंध में एक अर्धविश्वास पकड़ लिया कि यह एक जटिल यंत्र है। जब यह यंत्र है तो उसकी गणितीय शैली में संपन्न होने वाली पद्धति भी होनी चाहिए। उसे समझ लेने के बाद शरीर के लिए भी वैकल्पिक प्रबंध कर लिये जायेंगे।

भारतीय दृष्टि में शरीर चेतन आत्मा का वाहक या आवास है। शरीर हाड़-मांस का पिंड ही नहीं है बल्कि एक आवास है, जहां आत्मसत्ता विराज रही है। अतः आवश्यक है कि सारा निर्धारण उसकी आवश्यकता और गरिमा को ध्यान में रखकर किया जाये। आत्मिक चेतना का स्तर निरंतर उठता रहे। इस उत्कर्ष-यात्रा के लिए जो उपाय किये जाते हैं आहार भी उनमें से एक अंग है।

– ३१ अगस्त १९८९ की जनसत्ता में ज्योतिर्मय

पृष्ठ-१८-का शेष

पोल्ट्री के अंडे किसे नहीं खाने चाहिये?

जिसे व्यायाम की आदत न हो, जिसे भूख अच्छी तरह से न लगती हो, जिसका पाचन बिगड़ गया हो, वह पोल्ट्री के अंडे न खाये। सूजन, हृदय रोग, पक्षाघात (लकवा), पेचिश, यकृत के रोग, वृक्क (गुर्दा) के रोग, पथरी, संधिशूल, संधिवात, आमवात, कफ इत्यादि रोगों में अंडे बिल्कुल बंद कर दें। विशेषतः बढ़ती उम्र के बच्चों को ये अंडे न दें। प्रायः राजयक्ष्मा रोग में इन्हें खाने की सलाह दी जाती है। यह सरासर गलत है, क्योंकि इस रोग में भूख तो लगती है परंतु अन्न का पाचन-शोषण ठीक से नहीं होता।

कैसे अंडे खायें?

जो मुर्गी दिन भर खुले आकाश के नीचे स्वच्छन्द घूमती-फिरती है और दाने चुगती है, शरीर से मोटी न होकर अति चपल होती है, ऐसी मुर्गी से प्राप्त अंडे हितकर होते हैं। इन्हें "देशी अंडे" कहते हैं। इनका उपयोग यथेच्छ कर सकते हैं। पोल्ट्री के अंडों का प्रयोग सोच-समझ कर करें तो ही अच्छा।

पृष्ठ-३२-का शेष

लताकरंज

अवस्थाओं में लताकरंज के बीजों की मज्जा (गूदा) का चूर्ण ५००-१००० मि. ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार एक सप्ताह तक सादे जल के साथ लेने पर लाभ मिलता है। साथ में गर्भाशय की शुद्धि होकर , मासिक धर्म सही समय पर आता है।

--इसकी २५०-५०० मि. ग्राम की मात्रा दिन में २ बार लेने पर पेट में गैस नही बनती है।

--बच्चे के जन्म के पश्चात यदि प्रसूता स्त्री को पेशाब की तकलीफ हो तो उस अवस्था में इसके बीजों को पीसकर उसका लेप पेट पर लगाते है।

--ज्वर के पश्चात होने वाली कमजोरी में इसका प्रयोग करने से शरीर को बल मिलता है।

पृष्ठ-१२-का शेष

शिरीष

है। इसके लिए घी को बार-बार पानी से धोकर सफेद मलहम जैसा बनायें। सौ बार धोए घी को शतधौत घृत कहते हैं। इस घी में सिरस की छाल का चूर्ण मिलाकर चकतों पर लगायें।

--**विष का प्रभाव** दूर करने के लिए कम से कम आठ वर्ष की आयु के सिरस के पेड़ की अंदरूनी छाल, जड़ की छाल, बीज और फूल को गोमूत्र में पीसकर लुगदी बनाकर १५-२० ग्राम की मात्रा में तीन बार पानी के साथ देना चाहिए।

--**फोड़े-फुन्सियों** में सिरस के फूलों को पीसकर उन पर लेप करने से जलन शांत होती है और फोड़े भी शांत हो जाते हैं।

-- बहुत समय तक जो **घाव** भरने में न आ रहा हो, उस पर सिरस की छाल को पानी में घिसकर लेप करने से घाव शीघ्र भर आता है।

-- **चोट के कारण शरीर में दर्द** होने पर सिरस, निर्गुंडी और सैंजन इन वृक्षों की पत्तियां पानी में डालकर उबालें और इसकी भाप से दर्द वाले अंग को सेंकें। ठंडी हवाओं से उस अंग को बचाएं। दर्द से अवश्य राहत मिलेगी।

-- जिन पुरुषों को **पतले वीर्य** की शिकायत रहती है उनको सिरस के बीजों का चूर्ण १-२ ग्राम की मात्रा में एक गिलास दूध के साथ प्रतिदिन रात्रि में सोते समय लेना चाहिये। यह प्रयोग कम से कम एक माह तक करना चाहिये।

-- **नवीन अनुसंधानों** से पता चला है कि सिरस एलर्जी के कारण उत्पन्न सांस-फूलने (दमे) की बीमारी में भी लाभ करता है।

क्यो नहि चंगे होइए, देसी औषधि खाए।

धर्म रहे अरु धन बचै, रोग समूल नशाय।।

पृष्ठ-१५-का शेष

बहेड़ा

करने पर भी लाभदायक सिद्ध हुआ है। अतः केवल इसके फल या छाल से अनेक रोगों में लाभ पाया जा सकता है। यह फल सर्वत्र सरलता से मिल सकता है अतः हमें इस सर्वसुलभ द्रव्य का घरेलू नुस्खे के रूप में सेवन करना चाहिये। प्रायः अधिक जोर से बोलने पर या जुकाम के कारण गला खराब हो जाता है । ऐसी स्थिति में तुरंत इसकी छाल को भूनकर चूसने से लाभ होता है क्योंकि इसका वीर्य (तासीर) उष्ण है इसलिये यह कफ को आसानी से निकाल देता है। इसके फलों का प्रयोग बवासीर तथा पेट के कीड़ों में भी अच्छा लाभ करता है। इसकी मात्रा चूर्ण रूप में सेवन करने के लिये ३ से ४ ग्राम तक या १ से २ चम्मच तक है।

एक लोकोक्ति

हर्र, बहेड़ा, आँवला, काली मिर्च, गिलोय।
चाटै शहद मिलाय कै, कंठ कोकिला होय।।

पृष्ठ-२४-का शेष

पानी

उबालकर ठंडे किए हुए पानी से एनीमा लेने से भी पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रहता है।

अपचन

शहद एक चम्मच, शुद्ध पानी २५० मिली ताजा नींबू आधा, एक मात्रा अपचन में तीन-चार दिनों तक उपर्युक्त औषध लें।

दस्त, अतिसार-२५० मिली शुद्ध पानी को दस मिनट तक उबाल कर ठंडा करें और उसमें चुटकी भर नमक और आध चम्मच शक्कर डालकर भली भांति मिला लें। रोगी को दस-दस मिनट पर दो-दो चम्मच यह पानी पिलायें।

साधारण मूर्च्छा (जैसे थकान आदि के द्वारा)-- रोगी के मुंह पर ठंडे पानी के छींटे दें।

-- रोगी का सिर सीधा रखकर उसका मुंह खोलें और उसमें शुद्ध ठंडा पानी उड़ेलें

शब्द कोष

इस अंक में प्रयुक्त कुछ दुरुह शब्दों के प्रासंगिक अर्थ यहां दिये जा रहे हैं ताकि पाठकों को कठिनाई न हो।

अतिसार– जठराग्नि मन्द होने के कारण जब द्रव के रुप में मल अधिक मात्रा में निकलता है तो उसे अतिसार कहते हैं। सामान्य भाषा मे इसे दस्त कहते हैं।

कामला– इसे पीलिया कहते हैं। यह पाण्डुरोग का एक प्रकार है। यह प्रायः पित्त बढ़ाने वाले पदार्थों के अधिक सेवन से होता है। इसमें त्वचा, नाखून, आँखें, चेहरा तथा मूत्र पीले हो जाते हैं। जलन, दुर्बलता, अपचन एवं अरुचि इसके लक्षण है।

खालित्य– गंजापन।

धनुर्वात– वात प्रकोप से शरीर जब धनुष के समान टेढ़ा हो जाता है तो उसे धनुर्वात कहते है। इसे "टिटनस" कहा जाता है।

धातुवर्द्धक– सामान्य अर्थ में वीर्य को बढ़ाने वाली औषधि को धातुवर्द्धक कहते हैं।

मधुमेह– यह प्रमेह भी कहलाता है। कफादि के प्रकोप से मेदधातु विकृत होकर जब मूत्र के साथ निकलने लगती है, उसे मेह कहते हैं। इसे "डायबिटीज" कहा जाता है।

रूक्ष– यह स्निग्ध (चिकनाई) का उल्टा होता है। सूखा, खरखरापन, द्रवहीन, स्नेहहीन, शोषक द्रव्य।

आम--कच्चा या अनपचा। पाचक अग्नि के मंद होने पर खाये गये आहार द्रव्यों का पचन ठीक प्रकार नहीं होता। इस क्रिया से जो रस धातु बनती है उसे आम कहते हैं।

संधि --शरीर के जोड़ को संधि कहा जाता है।

शोथ--शरीर के जो किसी अंग में वात-पित्तादि दोषों के प्रकोप से होने वाली सूजन को शोथ कहते हैं।

स्नेह--चिकनाई। यथा, घृत, तैल, वसा, मज्जा को स्नेह कहा जाता है।

वृष्य --शरीर में बल व वीर्य को बढ़ाने वाले द्रव्यो को या कामोददीपक द्रव्यों को वृष्य कहा जाता है यथा उड़द की दाल।

लघु--हल्कापन। भूख बढ़ाने वाला, पचने के लिए हल्का पदार्थ।

विपाक --जब किसी ग्रहण की हुई वस्तु या रस का जठराग्नि के संयोग से अन्य रसों में रुपान्तर होता है तो उसे विपाक कहते हैं। कसैला, कड़वा और तीता इन रसों का विपाक तीता (लाल मिर्च का स्वाद), खटटे का विपाक खटटा , मीठे और नमकीन का विपाक मीठा होता है।

ल्यूकोरिया-- यह प्रदर भी कहलाता है जो दो प्रकार का होता है रक्त प्रदर व श्वेत प्रदर। इसमें रक्त दोष के कारण यानिमार्ग से स्राव होता है।

श्वासवह संस्थान--सांस लेने में जो इन्द्रिय मुख्य होता है उसे श्वासवह संस्थान कहते हैं। इसका मूल स्थान हृदय और फेफड़े हैं

श्वित्र– –इसे सफेद दाग कहते हैं।

क्षार (क्षारीय)-- तोड़ना, फोड़ना या खुरचकर निकालना यह क्षार द्रव्य का कार्य है। क्षार, सूखापन, शुद्धि , स्राव बंद करने वाला होता है। नमक को क्षार कहते हैं। क्षार गुणों से युक्त पदार्थ क्षारीय कहलाते हैं।

पाण्डु--इस रोग में रक्त के दूषित होने के कारण शरीर में विशेषकर त्वचा, नाखून, जिह्वा, आँखों में हल्का पीलापन आ जाता है। इसमें रक्तधातु का ह्रास व क्षय होता है।

आसव--द्रव्यौषधियों का पहले काढ़ा बनाकर फिर संधान से बनाये गये द्रव्य को आसव कहते है जैसे लोहासव, द्राक्षासव आदि।

आरिष्ट– –वनौषधियों से संधान क्रिया द्वारा बनाई गई औषधियों को आरिष्ट कहा गया है। यथा--अश्वगंधारिष्ट, दशमूलारिष्ट ।

संधान--वनौषधियों को मिटटी के पात्र में बंद कर जमीन में लम्बे समय तक दबा दिया जाता है इस समय जो कण्वन क्रिया होती है उसे संधान कहते हैं।

कल्क

वनस्पतियों को कुचल या पीसने के बाद बनने वाली चटनी ।

क्वाथ

औषधि को पानी में उबालकर बनाया गया काढ़ा । सामान्यतया औषधि में १६ गुना पानी डालकर उबालने के बाद जब पानी आठवां हिस्सा रह जाय तो उसे

स्वरस

किसी हरी वनस्पति के किसी अंग से बिना पानी मिलाये निकाला हुआ रस ।

लवण

इसे साधारण भाषा में नमक कहते हैं ।

आहार

प्राणियों द्वारा जो कुछ खाया जाता है उसे आहार कहते हैं ।

पेट दर्द नही तो और क्या होगा, एक तो रात में इन्होंनें मूली खाई और ऊपर से दूध पिया अलग ।

गुड़

वैद्य सत्यदेव पांडेय, लखनऊ

मानव सदियों से सुस्वादु भोजन के लिए जिन छः प्रकार के रसों का उपयोग करता आ रहा है। उनमें मधुर रस का स्थान सर्वप्रथम है। और शायद यही कारण है कि सभ्यता के विकास के साथ ही मधुर रस की ठोस प्राप्ति के लिए गुड़ का आविष्कार हुआ जिसका स्थान ,आज काल क्रम के साथ चीनी या शक्कर ने ले लिया है। भारत के सभी भागों में गुड़ का प्रयोग बहुतायत के साथ किया जाता है।

गुड़ को हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला भाषा में गुड़ नाम से ही जाना जाता है। मराठी में इसे गूळ, गुजराती में गोल, कन्नड़ में बेल्ल, तेलुगु में वेल्लाम एवं अंग्रेजी में जैगरी कहा जाता है।

गुड़ को गन्ने के रस से बनाया जाता है। गन्ने को कोल्हू अथवा पेरने की मशीन के द्वारा पेरकर पात्रों में उसके रस को इकट्ठा करते हैं। इस रस को छानकर कढ़ाह पर चढ़ाकर बड़े चूल्हे पर धीमी आंच पर देर तक पकाते हैं। पकने से यह गाढ़ा होने लगता है। इसे लकड़ी की हत्थी द्वारा चलाते रहते हैं। जब यह काफी गाढ़ा हो जाता है तो इसे चूल्हे से उतार लेते हैं। इसके पश्चात इसे खुरचकर एवं हत्थे से चलाकर ढेले या भेलियों के रूप में बना लेते हैं। यही गुड़ है।

गुड़ के गुण––गुड़ वीर्यवर्द्धक, पित्तनाशक, मधुर, वातनाशक, रक्त बढ़ाने वाला मूत्र का शोधन करने वाला, एवं बलकारक होता है। परन्तु एक वर्ष या उससे अधिक पुराना गुड़ अधिक उपयोगी होता है। नया गुड़ कफ को बढ़ाने वाला, श्वास रोग एवं पेट में कीड़े उत्पन्न करने वाला होता है। इसके सेवन से भूख नहीं लगती है। एक से दो वर्ष पुराना गुड़, रुचिकारक भूख बढ़ाने वाला, मूत्रशोधक , स्वादिष्ट, पाण्डु, पित्त एवं वातदोषनाशक है और अन्य औषधियों के संयोग से बुखार में लाभ करता है। तीन वर्ष पुराना गुड़ हल्का, मल एवं मूत्ररोगनाशक, भूख बढ़ाने वाला, बलकारक, मधुर एवं रक्तशोधक होता है। तीन वर्ष से पुराना गुड़ अत्यंत श्रेष्ठ माना गया है। अतः दवा के रूप में और औषध निर्माण में इसका ही उपयोग करते हैं।

विभिन्न ऋतुओं में गुड़ का उपयोग–

शरद ऋतु में गुड़ का विशेष उपयोग करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में भी गुड़ का सेवन लाभप्रद है। वर्षा ऋतु में वायु की प्रबलता की शान्ति के लिए गुड़ उपयोगी होता है। अतः यह सभी ऋतुओं में सेवन योग्य है।

गुड़ का उपयोग

१. गुड़ मिश्रित दही–शरीर में स्निग्धता उत्पन्न करने वाला, हृदय को बल देने वाला तथा वातनाशक होता है।

२. गुड़, खटाई एवं घी या मक्खन से युक्त मन्थ सत्तू-पानी मूत्र के रोग और पेट की गैस को नष्ट करता है।

३. गुड़ से बना हुआ पानक पचने में भारी तथा मूत्रजनक होता है।

४. गुड़ से बना खाद्य पदार्थ मालपुए, मिठाई आदि पचने में भारी , वातविकार का नाश करने वाले, पित्तनाशक और शुक्र एवं कफ को बढ़ाने वाले होते हैं।

५. गुड़ से बना मद्य कषाय, मधुर, पाचन तथा भूख बढ़ाने वाला होता है।

६. गुड़ का सिरका, भोजन का पाचक, पाण्डु और कृमि का नाश करने वाला, हल्का, तीक्ष्ण, उष्ण, मूत्रजनक हृदय को बल देने वाला तथा कफ का नाश करने वाला होता है।

आयुर्वेद में गुड़ के प्रयोग–

गुड़ अनुपान भेद से विभिन्न औषधियों के साथ प्रयुक्त होता है। यह मुख्यतः आसव, अरिष्टों के निर्माण में भी प्रयोग किया जाता है। इसमें तीन वर्ष पुराना गुड़ ही उपयोग में लाने का विधान है। इनके अलावा वटी गोली, अवलेह आदि के निर्माण भी इसका उपयोग किया जाता है।

यूनानी मत से गुड़ का उपयोग–

इस पद्धति के अनुसार गुड़ थोड़ी मात्रा में खाने को हजम करने वाला, सूजन कम करने वाला, फोड़े को पकाने वाला, मैथुन के कारण उत्पन्न थकावट को दूर करने वाला है। तथा इसे विरेचक औषधियों के साथ प्रयोग में लाया जाता है। सूजन पर इसकी पुल्टिस बांधते हैं। औषधियों को सुरक्षित रखने के लिए शहद की जगह गुड़ की चाशनी बनाकर माजून की कल्पना करते हैं।

आधुनिक मत से गुड़ का उपयोग–

आधुनिक मत से गुड़ में क्षार पाए जाते हैं। ये क्षार लोहा एवं ताम्र दोनों के होते हैं। लोहा रक्त बनाता है परन्तु रक्त बनने में ताम्र से सहायता मिलती है। इस प्रकार इसके उपयोग से रक्त का निर्माण होता है।

अनुपान भेद से गुड़ के गुण–

अदरक के साथ गुड़-कफ का, हर्रे के साथ-पित्त का एवं सोंठ के साथ-वातरोगों का नाश करता है।

पथ्य––कृशता, थकान, विष, शराब, बुद्धापा, पीलिया, पाण्डु(एनीमिया,) आदि रोगों में गुड़ अकेले या औषधियों के साथ पथ्य है।

अपथ्य––खांसी एवं राजयक्ष्मा में अकेला गुड़ अपथ्य है।

०

लेखकों से अनुरोध

पिछले दो-तीन महीनों से "जीवनीय" कार्यालय में आये दिन आपके इस आशय के पत्र आ रहे हैं कि संपादक जी, कृपया यह बताने का कष्ट करें कि "जीवनीय" में किस प्रकार की रचनाएं स्वीकार की जाती हैं? क्या आप "त्रिदोष सिद्धांत" पर लंबी कविता छापना चाहेंगे? "आयुर्वेदावतरण" और "समुद्र-मंथन" विषय पर एकांकी नाटक चलेगा? जीवक वैद्य की दो अंकों में समाप्य लंबी कहानी छापना चाहेंगे? साथ ही यह भी बतायें कि क्या आप प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक देते हैं?

वैसे तो **जीवनीय** के किसी भी अंक का अवलोकन करके आप जान सकते हैं कि हमें कैसी रचनाएं चाहिए। फिर भी, यदि आप हमीं से जानना चाहते हैं तो लीजिए, हम आपकी सुविधा के लिए नीचे "जीवनीय" के आगामी दो अंकों की तात्कालिक विषय-सूची यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। इनमें से आप अपनी पसंद का विषय चुन कर उस पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दो लेख भेजें, क्योंकि "जीवनीय" के हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में संस्करण निकलते हैं। हम हिंदी / अंग्रेजी / मराठी भाषाओं में लेख स्वीकार कर लेते हैं।

शर्त इतनी ही है कि रचना टाइप करा कर भेजें तो उत्तम अन्यथा कागज के एक ही ओर पर्याप्त हाशिया दे कर सुपाठ्य और संक्षिप्त, सरल लिखें। हमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट अथवा आधुनिक पाठ्यग्रंथों के लंबे-लंबे अनुच्छेद कृपया न भेजें। जो भी सरल उपचार लिखें, वह जांचा - परखा और अकाट्य हो। हमें तमाम तुकांत-अतुकांत कविताओं, लंबी कहानियों और एकांकी नाटकों से परहेज है। और परहेज हमें "कड़ई तोरई से समस्त रोगों का उपचार", "सोमरस के नाम पर आर्य क्या पीते थे ?" जैसे विषयों से भी है। हां, हम लोकोक्तियों को छापने में विशेष रुचि रखते हैं यदि ये स्वास्थ्य संबंधी हों।

नीचे दो प्रारुप दिये हैं। जहां तक संभव हो, लेख में प्रारुप में दिये गये बिंदुओं की व्याख्या होनी चाहिए। प्रारुप छापने का हमारा यह मतलब नहीं है कि आप प्रारुप को फारम की तरह भरकर हमें भेज दें। बल्कि उसकी आवश्यकतानुसार जानकारियां अपने लेख में देने का प्रयत्न करें। लेख से संबद्ध चित्र, रंगीन चित्र, ट्रांसपेरेन्सी अथवा कार्टून भी भेज सकें तो यह हमारा अहोभाग्य होगा। यह सभी चित्र आदि हम प्रयोग करने के बाद सहर्ष वापस कर देंगे।

आगामी अंकों में

हेमंत अंक : कार्तिक-अग्रहायण १६ नवंबर से १५ जनवरी

हेमंत ऋतु में स्वस्थ कैसे रहें ?

अभ्यंग (मालिश)

औषध द्रव्य

एरंड, निर्गुंडी, अश्वगंधा, काली मिर्च, जायफल/जावित्री

आहार द्रव्य

शकरकंद, उड़द की दाल, संतरा, मूंगफली, तिल

शिशिर अंक : पौष-माघ १६ जनवरी से १५ मार्च

शिशिर ऋतु में स्वास्थ्यरक्षक आहार-विहार

कास (खांसी)

अडूसा, आंवला, गाजर, शलजम, पालक, मेथी, अमरूद तथा देसी चिकित्सकों के अनुभव, पत्र-पत्रिकाओं से, मधुसंचय, अपने आंगन में, लोकोक्तियां, शब्द-कोष आदि स्थायी स्तंभ और ढेरों कार्टून।

प्रारुप-१

वानस्पतिक लेख

प्रस्तावना --- महत्व एवं प्रासंगिकता

भाषावार नाम---हिंदी / अंग्रेजी / लैटिन / उर्दू / तमिल / बंगला / गुजराती / पंजाबी / कन्नड़ आदि।

पहचान---रुप वर्णन

उगाने की विधि---मिट्टी, पानी, खाद, बीज, कलम लगाना

संग्रह काल और संरक्षण विधि

विभिन्न अंगों (जड़, छाल, पत्ती, फूल और फल) के औषधीय उपयोग

रोग लक्षण, भैषज्य कल्पना स्वरस, कल्क, कषाय, क्वाथ, फांट, मात्रा, प्रभाव

अन्य प्रकार के प्रयोग, यदि हों और उनके उपयोग

प्रारुप-२

रोग-विषयक लेख

संक्षिप्त प्रस्तावना---शास्त्रीय / प्रचलित / आधुनिक नाम

रोग के शास्त्रोक्त लक्षण

रोग की चिकित्सा की सहज उपलब्ध वनस्पतियां और उनके अंगविशेष का उल्लेख---आपके अनुभव

औषधि बनाने की विधि, मात्रा एवं अनुपान, पथ्य अपथ्य,

रोकथाम के उपाय और वे लक्षण जिन्हें देखते ही घरेलू उपचार का चक्कर छोड़ किसी योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

अंत में, आपके पारिश्रमिक संबंधी प्रश्न पर निवेदन है कि यह बात हमारे चित्त में तो है, पर हमारी जेब में पर्याप्त वित्त की समस्या है। इसके सभी कार्यकर्त्ता प्रायः अपने वर्तमान कार्य को करते हुए इस स्वयंसेवी अनुष्ठान में बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लगे हैं

फिलहाल तो आपको अपनी रचना की उत्तम प्रस्तुति, अंक की निःशुल्क प्रति तथा आपके छपे लेख के कुछ रिप्रिंट्स, इतने से ही संतोष करना होगा। हाँ देश भर में इसके वितरण का संतोष भी आपको होगा।

-संपादक मंडल

पृष्ठ-२६-का शेष

आँख का आना

सेकना एवं लवण या टंकण का घोल बनाकर सेंकना लाभकर होता है।

--हरड़, लोध्र, दारुहरिद्रा, गेरू, भुई आंवला और सेंधा नमक, यदि संभव हो तो इन सबको अथवा इनमें से किसी एक को पानी में घिसकर आँख के बाहरी पलकों पर लेप करने से आराम होता है।

सावधानियाँ

--जिस व्यक्ति की आँख आयी हो, उसके संपर्कसे बचें ।

--जहां तक संभव हो रोगी से हाथ न मिलायें।

--यदि एक आँख आयी हो तो उस आंख को पोंछने के लिए प्रयुक्त उंगली रुमाल अथवा कपड़े से दूसरी आंख को स्पर्श न करें।

--रोगी को अलग कमरे में रखें जिससे घर के अन्य लोगों तक संक्रमण न पहुंचे।

--जब यह बीमारी फैली हो तो धूप का चश्मा लगाकर आँखों को हवा से बचायें।

--आंखों को धूल, धूप और धुएं से बचायें।

आंख आना एक स्वतंत्र रोग के अतिरिक्त आंख की दूसरी व्याधियों का एक लक्षण भी है। अतः उपर्युक्त उपचार से लाभ न होन पर नेत्र चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

रोगी का रुमाल, तौलिया, हाथ, वस्त्र आदि को छूने से रोग के विषाणु छूने वाले में पहुंच सकते हैं। जब यह संक्रमण पूरे क्षेत्र में फैलता है तो इसका संक्रमण वायु द्वारा भी दूसरे व्यक्तियों में हो सकता है।

चिकित्सा

--रोगी को पूर्ण विश्राम दें। पढ़ने-लिखने का काम न करें, जिससे आँखों पर जोर पड़ता है और रोग बढ़ जाता है।

--जिस ओर की आँख आयी हो उसी करवट लेटें जिससे उस आँख का पानी बहकर दूसरी आँख में न जाने पाये।

पृष्ठ-१७-का शेष

पान

और गलें मे तकलीफ हो तो ताजे, हरे पान के पत्तों के साथ मुलेठी का चूर्ण दो ग्राम की मात्रा में खाने से लाभ मिलता है।

-पान खाने से **थकान** दूर होती है तथा शरीर को कुछ बल भी मिलता है।

-गांठ, सूजन, व घाव में इसके ताजे पत्तों को गरम करके बांधने से लाभ मिलता है।

पान का सेवन किन्हें नहीं करना चाहिये

आँख की बीमारी, त्वचा के रोग (जैसे-दाद, खुजली, सफेद दाग), उच्च रक्त चाप (हाई ब्लड प्रेशर), पेट में जलन, दर्द व खट्टी डकारें आना आदि इन रोगो से पीड़ित तथा पित्तज प्रकृति (गर्म स्वभाव) वाले व्यक्तियों को पान का सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि पान की तासीर गर्म होती है अतः पान के सेवन से इन रोगों के बढ़ने की संभावना अधिक रहती है। गर्म मिजाजवाले व्यक्तियों को पान का सेवन करना पड़े तो सफेद इलायची के साथ करना चाहिए।

विशेष

जिन्हें पान खाने का व्यसन हो जाता है उन्हें पान खाने से अच्छा मालूम होता है, उनका मन प्रसन्न रहता है, थकावट दूर होती है, प्यास व भूख कम मालूम पड़ती है एवं कुछ कामोत्तेजना भी होती है। पान तीव्र मादक (नशा उत्पन्न करने वाला) नहीं होता है। सोकर उठने पर, स्नान व भोजन के पश्चात् और वमन के पश्चात् पान का सेवन स्वास्थ्य के लिये लाभकर होता है। परंतु दिन में बार-बार पान खाना न केवल दांतों व मसूढ़ों के लिये नुकसानदेह होता है वरन इससे मुंह तथा गले का कैंसर तक हो सकता है।

पान के साथ ज्यादा सुपाड़ी, चूना, कत्था व आधुनिक तम्बाकू का सेवन स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

पान का सेवन भोजन के बाद लाभदायक है ही, साथ ही यह औषधि के रुप में भी उपयोगी है। भारतीय संस्कृति में संभवतः पान इसीलिए अभ्यागतों के स्वागत में ही नही वरन पूजा, अर्चना में भी प्रयुक्त किया जाता है।

(डा. जे. के. जौहरी, डा. बी. आर. बाल सुब्रह्मण्यम एवं डा. राजकिशोर एवं हकीम तस्वीर अहमद, लखनऊ

समदोषः समाग्निश्च् समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।
-सु. सू. अ. १६/४८

अर्थात्
जि स व्यक्ति के दोष (शारीरिक एवं मानेसिक सभी) अग्नि , धातु एवं मल की क्रियाएं सम अवस्था में हों तथा जो मन एवं इन्द्रियों दोनों से भी प्रसन्न रहता हो , ऐसे व्यक्ति को ही स्वस्थ कहते हैं।

ल्यूपिन लैबोरेट्रीज लि.
की
शुभकामनाओं
सहित

देशबंधु गुप्त
चैयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर

ल्यूपिन लैबोरेट्रीज लि.
१५९ सी. एस. टी. रोड, कलीना, बंबई-४०००९८

रजिस्ट्रेशन नं. ०७५९८५/४०/३६/ए.एल./८९-डी.सी.

ऋतुएं और हमारा स्वास्थ्य

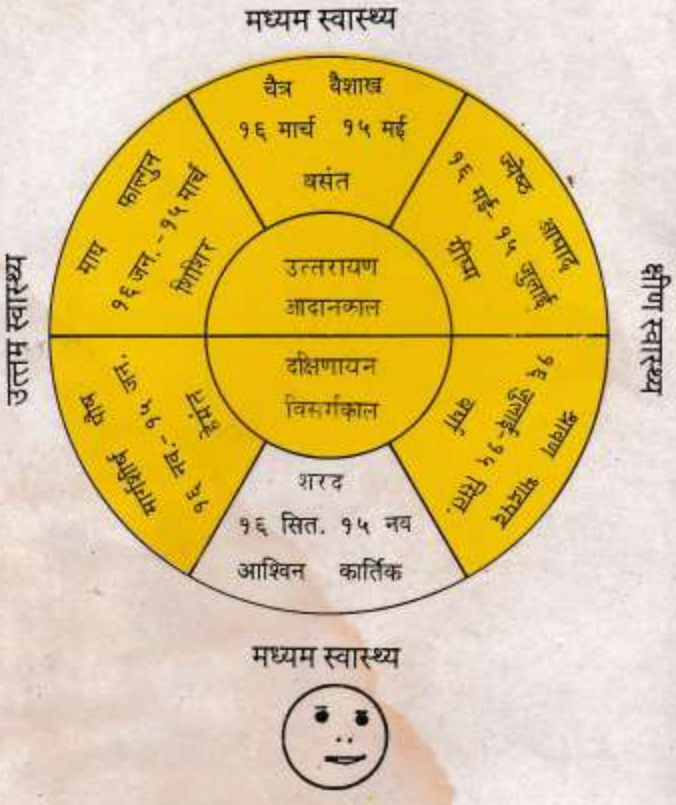

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम्।
मध्ये मध्यबलं त्वन्ते श्रेष्ठमग्रे विनिर्दिशेत्।।
-च.सू. ६.८